ओ३म्

वैदिक संस्कृति का उद्घोषक

वैदिक सार्वदेशिक

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली का साप्ताहिक मुख-पत्र

शुल्क :- एक प्रति 5 रुपया (भारत में) वार्षिक 250 रुपये तथा आजीवन 2500 रुपये

वर्ष 18 अंक 21 कुल पृष्ठ-12 20 से 26 अक्तूबर, 2022 दयानन्दाब्द 198 सृष्टि सम्वत् 1960853123 सम्वत् 2079 का. कृ.-11

वर्तमान में देश व विश्व को आर्य समाज की पहले से कहीं अधिक आवश्यकता है

महर्षि के सपनों का समाज बनाने के लिए एकजुट होकर तथा निष्ठापूर्वक कार्य करने का आर्य जन लें संकल्प

– स्वामी आर्यवेश

ज्योति पर्व दीपावली का महान सन्देश है अपने जीवन दीप के प्रकाश द्वारा समस्त मानवता को जगमगा देना और ऐसा करने पर ही अन्धकार में पनपने वाले विषमय तत्व विनष्ट होंगे। इसके लिए ज्ञान, प्रकाश, आलोक, ज्योति को अपने जीवन दीप में लाना ही होगा। अन्धकार को विनष्ट करने में, अन्यों के जीवन दीपों को प्रज्ज्वलित करने में, पथ भ्रष्टों के पथ प्रदर्शन में तिमिराच्छिन्न हृदयों को जगमगाने में यदि अपना दीपक बुझ भी जाये तो यही उसकी सार्थकता है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती का दीपावली पर्व से गहरा सम्बन्ध है। दीपावली के ही दिन महर्षि दयानन्द जी ने अपना भौतिक शरीर छोड़ा था। समूचा आर्य जगत दीपावली के पर्व को ऋषि निर्वाणोत्सव के रूप में मनाता है और इस दिन उनके बलिदान, महत्व, योगदान और विशेषताओं को स्मरण किया जाता है। उन्हें नम्र श्रद्धांजलि दी जाती है। आर्य समाज के इतिहास में दीपावली का पर्व स्वामी जी का स्मृति पर्व है। ऋषि दयानन्द ने दीपावली के दिन शरीर का त्याग कर संसार को सन्देश दिया था, "असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतम् गमय।

19वीं शताब्दी के आग्नेय पुरुष, प्रातः स्मरणीय, वेदोद्धारक महर्षि दयानन्द सरस्वती जब कार्य क्षेत्र में अवतरित हुए उस समय चारों तरफ, हताशा, अन्धकार अंग्रेजों का दमन चक्र, स्वाभिमान का अभाव, धर्म के नाम पर पाखण्ड, सत्य के नाम पर असत्य तथा ज्ञान के नाम पर अज्ञान का साम्राज्य व्याप्त था। ऐसे समय में महर्षि ने जन मानस को नई शक्ति, प्रेरणा तथा दिशा दी और भारत के कण-कण में स्फूर्ति का संचार किया। पाखण्डों का खण्डन कर, कुरान, बाईबिल के प्रभाव पर प्रबल प्रहार कर महर्षि ने राम, कृष्ण और ऋषि-मुनियों की पावन परम्परा को पुनः प्रवाहित किया। वेद ज्ञान की ज्योतिर्मय पताका फहराने के लिए जन-जन में वेद ज्ञान के प्रति आस्था जगाई। वर्तमान युग में यह बात किसी से छिपी नहीं है कि महर्षि दयानन्द जहाँ एक ओर प्राचीनता के पक्षधर और वेदोद्धारक थे वहीं वे दूसरी ओर नवयुग के नेता, वर्तमान के विधाता और भविष्य के पथ प्रदर्शक भी थे।

वेद ज्ञान के प्रसारक महर्षि दयानन्द सरस्वती, पाखण्डों को खण्ड-खण्ड करते हुए प्राचीन ऋषि मुनियों की पावन परम्परा के अजस्र प्रवाह को प्रवाहित करते हुए भारत के कोने-कोने में सत्य ज्ञान फैलाते हुए घूमते रहे। अपने अपूर्व ज्ञान, तप, त्याग और अगाध पाण्डित्य से स्वामी दयानन्द ने भारत के गौरव को पुनः प्रतिष्ठित किया तथा 1875 में बम्बई में 'आर्य समाज' नामक संगठन को स्थापित किया।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आर्य समाज की स्थापना से लेकर कालान्तर तक आर्य समाज ने अपनी कीर्ति पताका देश तथा विदेश में फहराई है और जो अद्भुत कार्य करके दिखाये हैं वह सर्वविदित है, शिक्षा प्रसार, समाज सुधार, नारी जाति का उत्थान, दलितोद्धार एवं स्वतंत्रता आन्दोलन का नेतृत्व और वैदिक धर्म के प्रचारार्थ आर्य समाज ने अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य किये हैं जिन पर हम गर्व कर सकते हैं। वर्तमान परिस्थितियों में पूरे विश्व को नई दिशा देने का दायित्व आर्य समाज पर आता है क्योंकि समाज में व्याप्त छुआछूत, धार्मिक पाखण्ड तथा अन्धविश्वास, नशाखोरी, भ्रष्टाचार, जातिवाद, साम्प्रदायिकता, गोहत्या, नारी उत्पीड़न एवं शोषण आदि समस्याओं से समाज पहले से कहीं अधिक त्रस्त है और इन बुराईयों की तरफ किसी संगठन या संस्था का विशेष ध्यान नहीं है। यद्यपि कतिपय राजनैतिक संगठन अपने निहित स्वार्थों को साधने के लिए उक्त मुद्दों पर नारेबाजी एवं शोषेबाजी करते दिखाई देते हैं किन्तु सामान्य जनता उनसे संतुष्ट नहीं है ऐसी स्थिति आम व्यक्तियों की निगाहें आर्य समाज के ऊपर लगी है। महर्षि दयानन्द द्वारा निर्देशित पथ के पथिक बनकर आज भी हम सामाजिक बुराईयों से त्रस्त समाज को मुक्ति दिला सकते हैं और जिसकी आज महती आवश्यकता भी है। लेकिन आज हम अपने लक्ष्य और उद्देश्य से भटक गये हैं। आर्य समाज में कार्य तो बहुत हो रहा है लेकिन राष्ट्रीय स्तर पर उसे दिखा पाने में हम असमर्थ रहे हैं। हमारा सारा कार्य बहिर्मुखी न होकर अन्तरमुखी हो

रहा है और हम सब आम जनता के बीच नहीं जा पा रहे हैं। आज आवश्यकता है क्रांतिकारी चरित्र, तेजस्वी स्वरूप और प्रभावशाली ढंग से एकजुट होकर कार्य करने की, तथा लोक कल्याणकारी योजनाओं के माध्यम से ज्ञान सम्मत, तर्कपूर्ण वैदिक सिद्धान्तों को जन-जन तक पहुंचाने की तथा पूरे विश्व के आर्यों को समाज के त्रस्त लोगों को साथ लेकर आर्य समाज के संगठन को व्यापक स्तर पर खड़ा करने की।

आर्य समाज के प्रत्येक सदस्य, नेता, उपदेशक, संन्यासी आदि को आदर्श उपस्थित करने की चिंता होनी चाहिए ताकि भावी पीढ़ी इसे अपनी श्रद्धा भरी आंखों में कैद करके सर्वदा आदेश को ही लक्ष्य के रूप में देखें। आज समस्याओं से निपटने के लिए हमारा एक विशाल संगठन है। हम यह सोचें कि यदि अकेला दयानन्द इनसे भी भीषण परिस्थितियों से जूझकर युग परिवर्तन कर सकता है तो ऐसे आदर्श गुरु के अनुयायी आज अकर्मण्य क्यों हैं? महर्षि जी ने जो बात कही वह सम्पूर्ण विश्व के लिए कही तथा उन्होंने कभी असत्य का समर्थन नहीं किया। फिर हम क्यों नहीं उनके आदर्शों पर चलते हैं? हम कैसे भूल गये कि महर्षि जी जब पाखण्ड के विरुद्ध अपनी आवाज उठाते थे और तेजस्वी वाणी से पाखण्ड पर प्रहार करते थे तो पाखण्डियों में खलबली मच जाती थी और प्रकाश के आवरण में सामाजिक बुराईयों का अन्धकार नष्ट हो जाता था। यह सर्वविदित है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती ने धार्मिक अन्धविश्वास तथा पाखण्ड के विरुद्ध पाखण्ड खण्डिनी पताका गाड़कर अवैदिक मत-मतान्तरों तथा मान्यताओं को खुली चुनौती दी थी और उन्होंने शास्त्रार्थ की परम्परा प्रारम्भ करके बड़े-बड़े दिग्गज पौराणिक विद्वानों की बोलती बन्द कर दी थी। शास्त्रार्थ के द्वारा महर्षि दयानन्द और अनेक अन्य अनुयायियों ने वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार करके मानवता का महान उपकार किया था। अतः आज आवश्यकता है पाखण्ड के विरुद्ध प्रचण्ड अभियान चलाने की तथा शास्त्रार्थ की परम्परा को पुनः प्रारम्भ करने की।

आर्य समाज के कार्यों को सिद्धान्त के अनुरूप करने तथा समन्वित अभियान चलाने की कार्य योजना प्रस्तुत की जा रही है। जिसे प्रत्येक स्तर पर क्रियान्वित किया जाना चाहिए।

1. आर्य समाज के मुख्य दिवसों जैसे महर्षि निर्वाण दिवस, बोध दिवस, स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस, महात्मा हंसराज जन्म दिवस, पं. लेखराम बलिदान दिवस, गुरुदत्त विद्यार्थी जन्मोत्सव, राम प्रसाद बिस्मिल बलिदान दिवस, भगत सिंह बलिदान दिवस, आर्य समाज स्थापना दिवस, लाला लाजपत राय, स्वामी दर्शनानन्द, स्वामी स्वतन्त्रतानन्द, महात्मा नारायण स्वामी आदि के जन्मोत्सव, श्री कृष्ण जन्माष्टमी, राम नवमी, श्रावणी पर्व तथा अन्य मुख्य पर्वों अथवा दिवसों पर एक साथ पूरे देश तथा विदेशों में उत्साहपूर्ण ढंग से कार्यक्रम आयोजित किये जायें। प्रयास किया जाये कि कार्यक्रमों में सम्मिलित होने वाले समस्त व्यक्तियों की वेशभूषा एक समान हो तथा गले में ओ३म् पट्ट हों। उस दिन विशाल स्तर पर यज्ञ हो और सब परिवार सहित उसमें सम्मिलित हों। तत्पश्चात एक विद्वान का प्रभावशाली उद्बोधन रखा जाये। इसके पश्चात् एक रैली के रूप में सभी अपने क्षेत्र के बाजारों, गलियों में जलूस निकालें जिसमें हाथों में ओ३म् के ध्वज व बैनर आदि लेकर अधिक से अधिक लोग चलें तथा नारों और जयघोष से सारे क्षेत्र को गुंजाते रहें। इसके साथ ही ज्वलन्त समस्याओं तथा सामाजिक बुराईयों के विरुद्ध बैनर एवं मोटो हों तथा नारे लगाते हुए सामाजिक बुराईयों के विरुद्ध जन-जागरण तथा इनसे बचने के उपाय भी बताते चलें। किसी एक स्थान पर बाजार के चौराहे या पार्क आदि में एकत्र होकर अपने पर्व और सामाजिक बुराईयों के विरुद्ध व्याख्यान हों। अपने पर्वों को मनाने के साथ-साथ सामाजिक परिवर्तन लाने का उद्देश्य भी रखा जाये। बुराईयों से त्रस्त लोगों को लगे कि आर्य समाज हमारी अपनी संस्था है और यह हमारे साथ है। समाज में एक सन्देश जाना चाहिए कि आर्य समाज अन्याय व बुराईयों के विरुद्ध खड़ा हो गया है। इन सब व्यवस्थाओं को सुचारू ढंग से चलाने के लिए आर्यवीर दल, आर्य युवक परिषद् तथा आर्य युवक समाज के नव युवकों को जिम्मेदारी सौंपनी शेष पृष्ठ 12 पर

सम्पादक - प्रो. विट्ठलराव आर्य

सत्य के पुजारी : ऋषि दयानन्द सरस्वती

– डॉ. महेश विद्यालंकार

देश के महापुरुषों की परम्परा में ऋषि दयानन्द का नाम बड़ी श्रद्धा, भक्ति और सम्मान से लिया जाता है। उनका इस संसार में आगमन ऐसे समय में हुआ, जब देश अंग्रेजों के अधीन था। चारों ओर अविद्या, अन्धकार, ढोंग, पाखण्ड, पंथ, गुरुडम आदि फैला हुआ था। भारतीय संस्कृति, सभ्यता, जीवन–मूल्य और आदर्श समाप्त हो रहे थे। नारी की स्थिति शोचनीय तथा दयनीय हो रही थी। ऐसे घोर अन्धकार में स्वामी दयानन्द प्रकाश स्तम्भ बनकर संसार में आए।

ऋषि का व्यक्तित्व निराला और क्रांतिकारी था। उन्हें शिवरात्रि को सत्य और जीवन का बोध हुआ। घर से निकल पड़े। फिर जीवनभर घर की ओर मुड़कर नहीं देखा। शिवरात्रि की रात जागे, फिर जीवन भर कभी नहीं सोए। सम्पूर्ण जीवन देश, धर्म, जाति, संस्कृति वेदोद्धार, आदि में लगा दिया। अपने लिए न कुछ चाहा न मांगा न संग्रह किया। न कोई चेला, न चेली, न अपने न अपने नाम से पंथ, सम्प्रदाय और गद्दी लगाई। सारा जीवन अपमान सहते रहे, पत्थर खाते रहे, गालियाँ सुनते रहे, जहर पीते रहे, बदले में संसार को सच्चा सीधा मार्ग दिखाते रहे। ऋषि देश, धर्म और जाति की दीन–हीन दशा को देखकर रातों जागकर करुण क्रन्दन किया करते थे। कवि के शब्दों में–

इक हूक सी दिल में उठती है,
एक दर्द जिगर में होता है।
हम रात को उठकर रोते हैं,
जब सारा आलम सोता है।

रोती हुई भारत माता के आंसू किसी ने पोंछे हैं तो वे ऋषि दयानन्द थे। वे हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए किले की दीवार बनकर आए। ऋषि का व्यक्तित्व चुम्बकीय और आकर्षक था। जो भी सम्पर्क में आया, उसी का कायाकल्प हो गया। जिसने भी उन्हें देखा, सुना और पढ़ा, वही उनका दीवाना हो गया। लोग तलवार लेकर आए और शिष्य बनकर गए। न जाने कितने गुरुदत्त, श्रद्धानन्द, हंसराज, लेखराम, अमीचन्द आदि के जीवन परोपकारी बन गये। वे गालियाँ देने वालों को फल और मिठाइयाँ भिजवाते थे। कई जगह पत्थरों की वर्षा हुई। वे इसे फूलों की वर्षा मानते थे। अपने विषदाता को यह कहकर मुक्त करा दिया कि मैं संसार को कैद कराने नहीं, बल्कि उसे कैद से छुड़ाने आया हूं। विषदाता जगन्नाथ को प्राणदान देने वाला संसार के इतिहास में ऐसा दूसरा उदाहरण न मिलेगा। जगन्नाथ को क्षमाकर रुपये देकर भाग जाने की सलाह देने वाला निराला प्रभु भक्त, योगी, ऋषि दयानन्द ही था। सच है कि वह महापुरुष 59 वर्ष की अविध के लिए संसार में आया था। ऋषि दयानन्द जैसा सत्यशोधक सत्यवक्ता सत्य का प्रचारक अन्त में सत्य पर ही शहीद हो गया। स्वामी जी के जीवन के अनेक प्रेरक प्रसंग है जिनसे आज जीवन और जगत को शिक्षा तथा सन्देश प्राप्त हो सकते हैं। एक बार बरेली की सभा में कमिश्नर, कलेक्टर व उच्चाधिकारी बैठे थे। स्वामी दयानन्द ने बड़ी निर्भीकता से कहा – लोग कहते हैं, सत्य मत प्रकट करो। सत्य बोलने से कलेक्टर नाराज होंगे। कमिश्नर अप्रसन्न होंगे। लोग पीड़ा देंगे। ऋषि ने सिंह गर्जना करते हुए कहा–चाहे लोग मेरी उंगलियों को मोमबत्ती बनाकर जला दें। चाहे मुझे लोग तोप के मुख के आगे खड़ा कर दें। फिर भी मेरी वाणी से सत्य ही निकलेगा 19वीं शताब्दी में स्वामी जी से बड़ा सत्य वक्ता और कोई महापुरुष नहीं रहा।

जोधपुर के प्रवास काल में एक दिन स्वामी जी राजा यशवन्त सिंह के दरबार में पहुंचते हैं। देखा वेश्या की पालकी को कन्धा लगाकर उठा रहे थे। इस दृश्य को देखकर स्वामी जी का हृदय दुखी और चिन्तित हो उठा। उन्होंने कहा– राजन, राजा सिंह समान समझे जाते हैं। जगह–जगह भटकने वाली वेश्या कुतिया समान होती है। राजा को कुतिया का साथ अच्छा नहीं लगता है। इस बुराई से कर्म भ्रष्ट होता है। मान–मर्यादा को बट्टा लगता है। ऋषि की यह स्पष्टवादिता उनकी मृत्यु का कारण बनी। वेश्या और स्वामी जी के अन्य विरोधियों ने रसोइये को लालच देकर उन्हें दूध में जहर दिला दिया।

ऋषि दयानन्द का दीपावली से गहरा सम्बन्ध है। दीपावली के दिन ही स्वामी जी ने अपना भौतिक शरीर छोड़ा था। समूचा आर्यजगत दीपावली को ऋषि की स्मृति का पर्व मानता है। यह उस महामानव के व्यक्तित्व कृतित्व, गौरव व योगदान को स्मरण करने की पुण्यतिथि है। हर वर्ष दीपावली ऋषि के तप, त्याग, बलिदान, तथा गौरव का स्मरण कराने आती है। उनका सम्पूर्ण जीवन प्राणी मात्र के उपकार में व्यतीत हुआ। उनका सम्पूर्ण जीवन और मृत्यु दोनों ही प्रेरक रहे। दुनिया के इतिहास में ऋषि जैसे मृत्यु के अन्तिम क्षण नहीं मिलते हैं। दीपावली का दिन था। जहर के कारण शरीर में भयंकर छाले पड़े थे। पूछा–आज कौन सा मास, पक्ष तथा दिन है? भक्त ने कहा–आज अमावस्या है व दीपावली का पर्व है। बोले– सभी दरवाजे और खिड़कियाँ खोल दो। ऋषि ने ऊपर की ओर देखा। गायत्री मंत्र का पाठ किया। तीव्र स्वर से 'ओ३म्' का उच्चारण किया। शान्त भाव से मुख से उच्चरित होने लगा। हे दयामय सर्वशक्तिमान ईश्वर तेरी यही इच्छा है। तेरी इच्छापूर्ण हो। तेरी लीला अदभुत है। यह कहकर लम्बी सांस खींची और बाहर निकाल दी। प्रभु का प्यारा देवता, अपनी इहलीला समाप्त करके की शरण में चला गया सभी असहाय बनकर देखते रहे। नास्तिक गुरुदत्त ऋषि के अन्तिम दर्शन करने आए थे। ऋषि की ईश्वर दृढ़ आस्था और मृत्यु का अन्तिम दृश्य देखकर गुरुदत्त कट्टर आस्तिक बन गए। ऋषि की मृत्यु भी प्रेरक बनी।

ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारी संस्था आर्यसमाज है। आर्यसमाज स्वामी जी का जीवन स्मारक है। आर्य समाज का राष्ट्र–निर्माण, वेदोद्धार, नारी शिक्षा, धार्मिक व सामाजिक कुरीतियों, ढोंग, पाखण्ड, अज्ञान, अन्धविश्वास आदि को मिटाने में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आर्यसमाज ने 'सदा जागते' रहो की भूमिका निभाई है। वर्तमान आर्यसमाज में अपने कर्तव्य, उद्देश्य तथा दायित्व में शिथिलता आ रही है। इसी कारण संसार में फिर तरह–तरह के ढ़ोंग, पाखण्ड, गुरुड्म, गुरु, महन्त, अंधविश्वास आदि तेजी से फैल रहे हैं। आर्य समाज अपने कर्तव्य और स्वरुप को समझे। यही ऋषि पुण्य स्मृति को सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

ज्योति पर्व दीपावली की
हार्दिक शुभकामनाएँ

सार्वदेशिक सभा परिवार समस्त आर्यजनों को दीपावली के पुनीत पर्व पर सुख, समृद्धि, स्वास्थ्य और शांति की कामना से परिपूर्ण बधाई देता है।

दीपावली के दिन ही महर्षि दयानन्द सरस्वती का निर्वाण, समस्त आर्यो के लिए ईश्वर भक्ति के मार्ग पर चलने तथा संगठित होने की सर्वोच्च प्रेरणा बनें, ऐसी परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

''दयानन्द भवन'' 3/5 आसफ अली रोड, नई दिल्ली–110002

ज्योति पर्व और वर्तमान भारतीय परिदृश्य

– अवध किशोर

अंधकार से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमृत की ओर और असत से सत की ओर सतत अग्रसर होने की श्रेष्ठ और समुज्जवल कामना हम करते हैं, हमारे पूर्व के ऋषि-महर्षियों ने यह श्रेष्ठ ज्ञान का दीप अखण्ड रूप से प्रज्जवलित किया और सद्गुणों के विकास के साथ ही उस ध्येय पथ को अपने जीवन में उतारा भी, साथ ही लोक कल्याण में उसे लगाया। आज जो समाज और राष्ट्र की दुरावस्था है उसे देखकर यह लगता है कि हम भूलते जा रहे हैं कि हम ऋषि-मुनियों की संतानें हैं जिन्होंने हमें श्रेष्ठ ध्येय पथ का दिशादर्शन कराया, आज चारों तरफ यही दृष्टिगोचर होता है कि तम (अन्धकार) का ही साम्राज्य है, तम (अन्धकार) ने उजालों को ही निगल लिया है। दम्भ, झूठ, भय, भ्रष्टाचार और अनाचार ने आसुरी संस्कृति को ही बढ़ावा दिया है जो देव संस्कृति को दिन पर दिन निगलता जा रहा है देश समाज और मानवता की चिन्ता किए बिना सभी अपने स्वार्थ साधना में लगे हैं, भ्रष्टाचार ने देश के विकास को रोक दिया है, झूठ ने सच को पीछे ढकेल दिया है तथा मिलावट ने जीवन के अरोग्यता को नष्ट कर दिया है, प्रकृत प्रदत्त अमृत को भी वह विष में बदल दिया है। पहले लोग कुछ भी गलत करने से डरते थे, उन्हें यह भय था कि उपर वाला देख रहा है। अब छल-प्रपंच और दम्भ में वे सब कुछ भूल चुके हैं, कम से कम समय में सबकुछ पा लेने की चाह और महत्वाकांक्षा उसे कुछ भी करने को मजबूर कर देती है, जो समाज की दशा और दुर्दशा है वही देश की भी है, भ्रष्टाचार और घोटालों ने देश को कंगाल बना दिया है व्यक्ति समाज के सहयोग से आगे बढ़ता है और वहां पहुँचकर वह अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करता है जो जितना बड़ा है, अपनी शक्ति और सामर्थ्य से उसी रूप में समाज देश को नुकसान पहुँचा रहा है। आडम्बरवाद, पाखण्डवाद और स्वार्थवाद ने राष्ट्रवाद को पीछे ढकेल दिया है स्वार्थवाद की विषवेल ने सम्पूर्ण राष्ट्र को जकड़ लिया है, यह इतनी तेजी से फैल चुकी है कि तम (अन्धकार) रूपी दानव का ही साम्राज्य बढ़ रहा है, चिरागों की लव मंद पड़ रही है, महंगाई ने उसे अपना ग्रास बना लिया है, ज्योति पर्व पर हम दीये के समर्पण से भी सिख नहीं लेते, जिस दीये ने अपने को जलाकर ही हमें प्रकाश दिया है, जिससे चारों तरफ ही खुशियाँ बिखरी हैं। अन्धकार का नाश प्रकाश का प्रभुत्व बढ़ा है।

सरकारें दावा करती हैं महंगाई कम होगी, सबको भरपेट भोजन मिलेगा, लेकिन उसके ठीक विपरीत महंगाई सुरसा के मुख की भांति दिन दूना रात चौगुना बढ़ती ही जा रही है, त्योहारों पर भी उसकी मार स्पष्ट दिख जाती है, जरूरत की अनेक चीजें हमारी पहुँच से बाहर जा रही है, लेकिन सरकार है कि बेसुरा राग अलापे जा रही है, दीवाली में तेल महंगा, बत्ती महंगी, दीया महंगा, दीपक जले भी तो कैसे? आनन्द और खुशियों का त्योहार चारों तरफ ही फीका दिखता है, कभी आज से 70 वर्षों पहले मिली आजादी का सूर्य उगा था, लेकिन इतने लम्बे वर्षों के बाद भी उजाला करोड़ों घरों तक नहीं पहुंचा जनता बेहाल है नेता लोग घोटालें पर घोटालें किये जा रहे हैं। बेईमानी और अराजकता का चारों ओर बोलबाला है कौन पाक साफ है अब यह कहना मुश्किल है आम जनता के हिस्से में तो भय, भूख और बीमारी ही है, उसे सबकुछ ही सहना पड़ता है, वह करें भी तो क्या करें, वह थक हार कुम्भकर्णी नींद सोने को मजबूर है कभी वह जगती है फिर सो जाती है बार-बार जनता ठगी जाती है, उसके नियत में ठगना है बेवकूफ बनाना है आवश्यकता है उसके स्वाभिमान को जगाने की, राष्ट्र के अतीत के गौरव को राष्ट्रवासियों को बताने की। यह भारत भूमि घोटालों और भ्रष्टाचार की भूमि नहीं थी, यह सोने की चिड़िया थी, जहाँ पर दूध-दही की नदियां बहती थी, जहां के लोग प्रकाश के ही पुजारी थे समय की आवश्यकता है जनता एक बार हुंकार कर उठे तो फिर देश का भाग्य चमक उठेगा, तम (अन्धकार) विदीर्ण हो जायेगा चारों तरफ ही प्रकाश का साम्राज्य होगा। भय, भूख, बीमारी से देश मुक्त हो जायेगा। कोई घोटाला और भ्रष्टाचार करने वाला होगा ही नहीं, फिर तो दीप की लव सतत ज्योतित ही रहेगी, माँ भारती अपने सपूतों को बार-बार पुकार रही है, उठो तम (अन्धकार) को विदीर्ण करने हेतु शंखनाद करो। राष्ट्रहित को सर्वोपरि मान स्वार्थहित की तिलांजलि दो तथा ज्योति पर्व के दीपों से प्रेरणा लो। सम्पूर्ण विश्व में भारत देश की जो छवि बन रही है उसे इस देश की जनता जनार्दन ही ठीक कर सकती है, जब तक जनता अपने को दीनहीन और असहाय महसूस करती रहेगी, घोटाले होते रहेंगे। देश लुटता रहेगा और जनता पिटती रहेगी यह स्थिति सम्मानजनक स्थिति नहीं है लूटना और पिटना जो हमारी नियत बन गई है इससे ऊपर उठना होगा और यह तभी सम्भव है जब हम सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के आधार पर संगठित हों और एक महान लक्ष्य के प्रति अपने परम कर्त्तव्य को समर्पित हों।

(लेखक प्रसिद्ध टिप्पणीकार हैं)

जगमग दीप जलाएँ

आओ! आर्य सपूतों आओ! जगमग दीप जलाएँ।
गहन तिमिर में भटक रही, जगती को राह दिखाएं॥
मिट्टी के दीपों से निश्चय, मिटता नहीं अन्धेरा,
अगणित तारों के उगने से, होता नहीं सबेरा।
दानवता के तिमिरतैन्य ने, महिमामण्डल है घेरा,
रहा नहीं है मानवता का, सुन्दर सुखद बसेरा।
बिखरा किरणें ज्ञान ज्योति की, नया सबेरा लाएं।
गहन तिमिर में भटक रही, जगती को राह दिखाएं॥
तम के अंचल में सोता है, आज यहाँ दिनमान,
ज्ञान हमारा कहांलुप्त है, विस्तृत क्यों अज्ञान?
चलो, देख लो, कहांसो रहा, भारत का अभिमान,
सत्य शिवम् सुन्दरता पुरित, कहां गए प्रतिमान?
बन करके आलोक पुंज हम, जाग्रत ज्योति जगाएं।
गहन तिमिर में भटक रही, जगती को राह दिखाएँ॥
लोभ-मोह-मद मत्सर का, है फैला पारावार,
काम-क्रोध बढ़ रहा चैतुर्दिक, नष्ट धर्म का सार।
मानवता के तत्वों को क्यों? होता है व्यापार।
भौतिक संस्कृति नहीं कभी, कर सकती है उपचार।
धर्माध्यात्म प्रदीप प्रभाहम, पुनः प्रदीप्त कराएं।
गहन शिविर में भटक रही, जगती को राह दिखाएँ॥
ऐसा दीप जले जिससे, न रहे तिमिर का लेश।
ज्योतिर्मय हो पूर्ण धरा, यह प्रगटे ज्ञान दिनेश॥
दम्भ द्वेष-मिथ्या हिंसा का बचे नहीं अवशेष,
प्रेम-दया ममता का, सदा रहे उन्मेध।
शांति सफलता समृद्धि के संगीत मनुज सब गाएं।
गहन तिविर में भटक रही जगती को राह दिखाएँ॥

- राधेश्याम आर्य विद्यावाचस्पति
मुसाफिरखाना, सुलतानपुर (उत्तर प्रदेश)

स्वतन्त्रता संग्राम के उन्नायक

महर्षि दयानन्द सरस्वती

– आचार्य भगवानदेव 'चैतन्य'

आर्य समाज एक अमर क्रांति का नाम है। एक ऐसी क्रांति जिसने अपने परिवर्तनशील प्रवाह से एक नई चेतना और दिव्य आलोक बिखेर दिया। यह एक ऐसी आग है, जिसमें किसी प्रकार की जलन और तपन नहीं बल्कि उत्साह, उमंग एवं अविरल गतिशीलता है। उसके संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती जन्मजात क्रांतिकारी थे। उनकी क्रांति संकुचित नहीं, बल्कि अपने भीतर बहुआयामों को समाविष्ट किए हुए थी। उनकी क्रांति के स्रोत बहुमुखी थे। उनका ओज, तेज और ज्ञान स्वयं उसकी महत्ता का साक्षीथा। उन्होंने बचपन से ही झूठ, छल–कपट और समाज की जर्जर मान्यताओं से संघर्ष किया। जड़ता से चेतनता की ओर उनका अभियान उसी समय आरम्भ हो गया था जब वह अभी मात्र 12 वर्ष के ही थे। वह उसी अल्पवय से समाज की सब गली–सड़ी परम्पराओं के प्रति विद्रोही हो उठे थे। झूठे शिव को त्यागकर सच्चे शिव को प्राप्त करने का संकल्प भी उनकी क्रांति का ही एक हिस्सा था। आजीवन कठिन से कठिन बाधाओं और मुसीबतों से जूझकर अन्ततः मृत्यु को अंगूठा दिखाकर अमरत्व का आलिंगन करने वाला यह अद्भुत महामानव अपनी मिसाल आप ही थे। सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक आडम्बरों, पोंगापन्थियों से जिस साहस और दृढ़ता से यह सत्य के उपासक जा टकराए वह अद्वितीय और अभूतपूर्व है। यही नहीं, प्यारे राष्ट्र को परतन्त्रता की कठोर बेड़ियों से जकड़ा हुआ देखकर तो दयानन्द मानो क्रांति के एक दहकते अंगारे ही बन गए। राष्ट्रप्रेम की यह अप्रतिम भावना अपने ग्रन्थों और दिये प्रवचनों से स्वतः ही स्पष्ट हो जाती है। सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की नींव इसी क्रांतिकारी ने अपने उत्कट साहस से रखी थी। यही नहीं उसे सफलता तक ले जाने के लिए अपनी सक्रिय भूमिका भी निभाई थी, मगर निश्चित तिथि से पूर्व ही प्रस्फुटित हो जाने और अपने ही देश के कुछ गद्दारों के विश्वासघात के कारण यह संग्राम सफलता का मस्तक नहीं चूम सका, फिर भी दयानन्द इससे हताश और निराश नहीं हुए बल्कि स्वतंत्रता की लड़ाई का नींव और भी अधिक गहरी रखने के प्रयास में जुट गए। उन्होंने गहराई से उन कारणों पर मनन और चिन्तन किया, जिसके कारण यह संग्राम अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सका और उन कारणों को दूर करने के लिए कार्यक्षेत्र में दुगने उत्साह से उतर गये।

स्वदेशी राज्य सर्वोपरि उत्तम

उनके हृदय में राष्ट्र के प्रति अथाह प्रेम था, तभी तो सन् 1872 में भारत के तत्कालीन वायसराय नार्थ ब्रुक के मुंह पर ही इस फकीर ने कह दिया था, मैं नित्य प्रातः–सायं परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि मेरा देश पराई दासता से मुक्त हो। अपने विश्वविख्यात ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' के 8वें समुल्लास में उन्होंने लिखा '.... कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है।' इसी ग्रन्थ में वह कहते हैं – माता–पिता के समान कृपा न्याय और दया के साथ भी विदेशियों का राज्य पूर्ण सुखदायक नहीं हो सकता। उन्होंने अपने ग्रन्थ 'आर्याभिविनय' में वेदमंत्रों के माध्यम से स्थान–स्थान पर अद्भुत प्रार्थनाएँ की जो उनकी देशभक्ति की उत्कट भावनाएँ प्रकट करती हैं। कहते हैं कि चन्द्रशेखर आजाद तब तक अन्न ग्रहण नहीं करते हैं थे जब तक इस ग्रन्थ के किसी एक मन्त्र का स्वाध्याय नहीं कर लेते थे। उनका यह ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश से भी पहले की रचना है। इसी ग्रन्थ में वह एक स्थान पर कहते हैं – 'विदेशी राज्य हमारे देश पर कभी शासन न करें।' लोकमान्य जी का कथन है – दयानन्द स्वराज्य शब्द के प्रथम सन्देशवाहक थे। मदनमोहन मालवीय जी का कथन है – 'वह भारत को स्वतन्त्र तथा दिव्य देखना चाहते हैं' इसी स्वतंत्रता और दिव्यता की विधिवत प्राप्ति के लिए उन्होंने 1875 में आर्य समाज की स्थापना की। आर्य समाज ने चारों ओर चेतनता और नवजागरण की ऐसी धूम मचाई कि एक अमेरिकी विद्वान कह उठा – 'मैं एक धधकती ज्वाला को देख रहा हूँ। अनन्त प्रेम की अनन्त ज्वाला जो समस्त द्वेष दावानल को भस्मसात् कर देगी। इस धधकती ज्वाला का नाम है – आर्य समाज। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने उस समय स्वतन्त्रता प्राप्ति की सिंह गर्जना की थी, जब समस्त भारतीय समुदाय आलस्य और भय की गहरी नींद में सोया हुआ था।

जंजीरों से जकड़े देश को राह दिखाई थी तूने,
जिसको न काल भी बुझा सके वह शमां जलाई थी तूने।

घनघोर तिमिर के आंगन में तू बीज उषा के बोता था,
आवाज लगाई थी तूने जब सारा भारत सोता था।

सच्चे आर्य समाजी को तो देशभक्त की भावना मानो घुट्टी में ही मिल जाती थी इसलिए आर्य समाज क्रांतिकारियों का पर्यायवाची बन गया। अंग्रेज सरकार के तत्कालीन (1911) जनसंख्या अध्यक्ष मिस्टर ब्लण्ट ने आर्य समाज पर टिप्पणी करते हुए लिखा था – 'आर्य समाज के सिद्धान्तों में देशभक्ति की प्रेरणा है। आर्य सिद्धान्त और आर्य शिक्षा समानरूप से प्राचीन भारत के गीत गाते हैं और ऐसा करके अपने अनुयायिओं में राष्ट्र के प्रति गौरव की भावना जगाते हैं। एक अन्य अंग्रेज के शब्दों में – 'किसी भी आर्य समाजी की खाल को खुरचकर देखो तो अन्दर छिपा हुआ क्रांतिकारी देशभक्त दयानन्द दिखाई देगा'।' सचमुच में ही आर्य समाज क्रांतिकारियों का स्रोत बन गया। श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा, बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय, लाला हरदयाल, भाई परमानन्द, भाई बालमुकुन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, वीर सावरकर, मदन लाल ढींगरा, सरदार भगतसिंह, पण्डित कांशीराम, रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकउल्ला खां, रोशन सिंह लाहड़ी तथा चन्द्रशेखर आजाद जैसे सैकड़ों वीर भारत माँ की बेड़ियों को छिन्न–भिन्न करने के लिए अपने प्राण हथेली पर लेकर निकल पड़े। इन सभी क्रांतिकारियों का प्रेरणास्रोत मूलतः आर्य समाज ही था। इसलिए आर्य समाज पर अंग्रेज प्रशासन की हमेशा कुदृष्टि बनी रहती थी। यहाँ तक कि आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संगों में अंग्रेज गुप्तचर बैठे रहते थे। आर्य समाज को अनेक प्रकार की यातनाएँ सहनी पड़ी मगर नर्म और गर्म दोनों ही दलों में यह अपनी सक्रिय भूमिका निभाता रहा। कांग्रेस के इतिहास में डॉ. पट्टाभि सीतारमैया लिखते हैं – 'स्वतंत्रता संग्राम में 80 प्रतिशत से भी अधिक आर्य समाज के लोगों का सहयोग रहा है।'

आज हम स्वतंत्र तो हो गए हैं, मगर जिस स्वतंत्र भारत की कल्पना हमारे वीर शहीदों ने की थी उसका निर्माण हम आज तक नहीं कर पाये हैं क्योंकि कुछ गद्दीधारी स्वार्थियों ने स्वतंत्रता का प्रसाद जन–साधारण तक नहीं पहुँचने दिया बल्कि अपनी मुट्ठियों में बन्द कर दिया –

वो कफन चुराकर बैठ गए जा महलों में,
देखो गाँधी की अर्थी नंगी जाती है,
इस रामराज्य के सुधर रेशमी दामन में,
देखो सीताओं की लाज उतारी जाती है।

आर्य समाज ने अपने बलिदान की कीमत नहीं मांगी, अन्यथा वह भी अपनी रोटियाँ सेंकने के लिए आगे बढ़ सकता था। अपने तप और त्याग का ढिंढोरा नहीं पीटा, जबकि स्वतंत्रता प्राप्ति में उसका सबसे अधिक सहयोग रहा। सुप्रसिद्ध नेताओं के ये हार्दिक उद्गार आर्य समाज के कार्य की मुँह बोलती तस्वीर है। श्रीमती एनीबेसेन्ट ने लिखा है – 'महर्षि दयानन्द पहले व्यक्ति थे जिन्होंने भारत, भारतीयों के लिए का नारा लगाया।' राजा महेन्द्र प्रताप कहते हैं – 'आर्य समाज क्रांतिकारियों की संस्था है। इसके सदस्यों में देशप्रोम की भावना है।' सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन का कथन है – 'स्वामी जी ने स्वराज्य का सबसे पहले सन्देश दिया था।' लाल बहादुर शास्त्री जी ने कहा – 'महर्षि दयानन्द महान राष्ट्रनायक नेता और क्रांतिकारी महापुरुष थे और उन्होंने राजनीतिक क्षेत्र में अभूतपर्व कार्य किया।' दादा भाई नौरोजी कहते हैं – 'मुझे स्वामी दयानन्द जी के ग्रन्थों से स्वराज्य की लड़ाई में बड़ी प्रेरणा मिली।' महाराष्ट्र के नेता एन.वी. गाडगिल का कहना है – 'महाराष्ट्र में जो स्थान छत्रपति शिवाजी अथवा समर्थ गुरु रामदास का है, वही स्थान भारत के राष्ट्रीय उत्थान में महर्षि दयानन्द का है।'

वास्तव में कांग्रेस ने भी कालान्तर में जिन कार्यों को स्वतंत्रता संग्राम का आधार बनाया उनकी घोषणा महर्षि दयानन्द जी पहले ही कर चुके थे। सरदार बल्लभभाई पटेल के शब्दों में – 'मेरी दृष्टि में वह सच्चे राजनीतिज्ञ थे। 40 वर्षों में कांग्रेस का जो कार्यक्रम रहा है वे सब कार्य 60 वर्ष पूर्व स्वामी दयानन्द ने देश के लिए रखे थे। सारे देश में एक भाषा, खादी, दलितोद्धार, स्वराज्य की घोषणा आदि सब दयानन्द ने देश को दिए वास्तव में वह ही भारत की स्वाधीनता की नींव रखने वाले थे। तभी तो भूतपूर्व लोकसभा अध्यक्ष अनन्त शयनम् आयंगर ने कहा था कि – 'गाँधी जी राष्ट्र के पिता थे तो महर्षि दयानन्द राष्ट्र के पितामह थे। महर्षि हमारी राष्ट्रीय प्रवृत्तियों और स्वतंत्रता आन्दोलन के आद्यप्रर्वतक थे। महर्षि जी के अप्रतिम योगदान को देखते हुए डॉ. एनी बेसेन्ट ने तो यहाँ तक कहा – 'जब स्वाधीन भारत का मन्दिर बनेगा, तो उसमें स्वामी दयानन्द की मूर्ति की वेदी सबसे ऊँची होगी।'

आज जबकि समूचा राष्ट्र पुनः बिखरने के कगार पर खड़ा है। जातिवाद और सम्प्रदायवाद का जहर गाँव–गाँव तक पहुँच गया है। मजहबी कोढ़ ने गली–गली को अपनी सड़ान्ध से दूषित कर दिया है, हमें पुनः राष्ट्रीय प्रवृत्तियों और स्वतंत्रता के आद्यप्रर्वतक महर्षि दयानन्द तथा आर्य समाज की शिक्षाओं की ओर लौटना पड़ेगा। यही असम्प्रदायिक विचारधारा हमें आज इस संकट से उबार सकती है। मार–काट और खून–खराबे के राक्षसी बादल पुनः मण्डरा रहे हैं। स्वार्थी जनून का काला आवरण हमें अपनी चपेट में लेने के लिए आगे बढ़ रहा है। इसे महर्षि जी की मानवतावादी विचारधारा से विदीर्ण करना होगा तभी राष्ट्रीय अस्मिता और हमारी संस्कृति एवं स्वतंत्रता सुरक्षित रह सकती है अन्यथा अपनी इस गफलत का हमें बहुत बड़ा मूल्य चुकाना पड़ेगा –

वक्त की फिक्र कर नादान मुसीबत आने वाली है,
तेरी बर्बादियों के मशविरे हैं आसमानों में।
न समझोगे तो मिट जाओगे ऐ हिन्दोस्तां वालों,
तुम्हारी दास्तां तक भी नहीं होगी दास्तानों में।।

– 81/एस–4, सुन्दरनगर कालोनी,
जिला–मण्डी, हिमाचल प्रदेश–174402

''महर्षि दयानन्द–आर्य समाज और हिन्दी''

- पं० शिवकरण दुबे 'वेदराही'

आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द मात्र एक वैदिक ऋषि ही नहीं थे अपितु एक प्रखर राष्ट्रवादी चिंतक एवं राष्ट्र निर्माता थे। जहाँ उन्होंने धार्मिक, आध्यात्मिक तथा समाज सुधार के क्षेत्र में अपनी दिव्य दृष्टि का आलोक बिखेरा वहीं राष्ट्रीयता के सभी मूल तत्वों को संगठित तथा क्रियान्वित करने का अथक प्रयत्न किया। भाषा, संस्कृति की एकता उनके क्रांति का मूलाधार थी। उनका मानना था "एक धर्म, एक भाषा और एक लक्ष्य बनाये बिना भारत का पूर्ण हित और जातीय उन्नति का होना दुष्कर है। सब उन्नतियों का स्थान ऐक्य (राष्ट्रीय एकता) है। जहाँ भाषा, भाव में एकता आ जाए, वहाँ सागर में नदियों की भाँति सारे सुख एक–एक करके प्रवेश करने लगते हैं।" उन्होंने राष्ट्र जागरण के लिए देश की भाषाओं का महत्व जानकर कलकत्ता प्रवास के समय बंगाली केशव चन्द सेन के सुझाव पर हिन्दी भाषा को अपने सम्प्रेषण का आधार बनाया क्योंकि हिन्दी एक जनभाषा के साथ–साथ साहित्यिक भाषा के रूप में विकसित हो चुकी थी। उन्होंने इस तथ्य को समझा कि समूचे राष्ट्र को एक सूत्र में बांधने के लिए लोक प्रचलित हिन्दी भाषा ही उपयुक्त होगी। उन्होंने सन् १८७५ में आर्यसमाज की स्थापना की और आर्यजनों को नागरी में पत्राचार और लेखन की प्रेरणा दी। स्वयं उन्होंने गुजराती और संस्कृत का लोभ छोड़कर अपना ग्रंथ 'सत्यार्थप्रकाश' हिन्दी में लिखा। उस युग में स्वामी दयानन्द का हिन्दी में गद्यात्मक ग्रंथ लिखना, वेद भाष्य करना तथा हिन्दी में प्रवचन करना ऐतिहासिक दृष्टि से युगान्तरकारी था। अहिंदी भाषी होते हुए भी स्वामी जी ने हिन्दी को सम्पूर्ण देश की भाषा बनाने का क्रियात्मक प्रयास किया। स्वामी जी ने अपने पूना प्रवचन में कहा था कि हिन्दी द्वारा समस्त विश्रृंखलित भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है, स्वामी जी हिन्दी को 'आर्य भाषा' कहते थे। लाहौर में समाज के संगठन के दौरान स्वामी जी ने एक उपनियम बनाकर सब आर्य समाजियों के लिए हिन्दी सीखना आवश्यक कर दिया था। सन् १८७४ में स्वामी जी को हिन्दी में प्रवचन करते देखकर श्री जवाहर दास जी ने, जो मथुरावासी थे, कहा कि स्वामी जी आपको तो संस्कृत में बोलना चाहिए' इस पर स्वामी जी ने उनको समझाया कि लोकभाषा में उपदेश देने से मनुष्यों का अधिक हित होता है। हरिद्वार में एक दिन स्वामी दयानन्द अपने आसन पर बैठे– कुछ समझा रहे थे, बीच में एक सज्जन ने निवेदन किया ''यदि आप अपनी पुस्तकों का अनुवाद कराकर फारसी में छपवा दें, तो पंजाब आदि प्रांतों में जो लोग नागरी अक्षर नहीं जानते उनको आर्य धर्म को जानने में बड़ी सुविधा हो जाय।'' इस पर स्वामी जी ने उत्तर दिया कि अनुवाद तो सिर्फ विदेशियों के लिए हुआ करता है नागरी अक्षर थोड़े ही दिनों में सीखे जा सकते हैं आर्य भाषा का सीखना कोई कठिन काम नहीं है। जो इस देश में उत्पन्न होकर अपनी भाषा सीखने में कुछ परिश्रम नहीं करता, उससे और क्या आशा की जा सकती है। आप तो अनुवाद की सम्मति देते हैं परन्तु दयानन्द के नेत्र तो वह दिन देखना चाहते हैं कि जब कश्मीर से कन्याकुमारी तथा अटक से कटक तक नागरी अक्षरों का ही प्रचार होगा। मैंने आर्यावर्त्त भर में भाषा का ऐक्य सम्पादन करने के लिए ही अपने सफल ग्रंथ आर्य भाषा में लिखे और प्रकाशित कराये हैं। स्वामी जी ने हिन्दी का स्वयं प्रयोग ही नहीं किया अपितु अपने सहयोगियों से वे हिन्दी में ही पत्राचार के लिए कहते थे। १४ अगस्त, १८८२ को दयानन्द स्वामी ने लाला कालीचरण जी को पत्र में लिखा कि आप लोग जहाँ तक हो सके आर्य भाषा को राज कार्य में प्रवृत्त कराने हेतु शीघ्र प्रयत्न कीजिए। स्वामी जी ने श्याम जी कृष्ण वर्मा को पत्र लिखा कि ''अंको को बांधकर नागरी में लिखाना''। इन उद्धरणों से स्वामी जी की हिन्दी के प्रति निष्ठा और दूरदर्शिता झलकती है। स्वामी जी के प्रयास का प्रतिफल था कि उनके परवर्ती खड़ी हिन्दी के जन्मदाता कहे जाने वाले भारतेन्दु ने हिन्दी के प्रचार–प्रसार का महान् कार्य किया। वे महर्षि के नवजागरण से प्रभावित थे तथा उनकी रचनाओं में सत्यार्थप्रकाश का भी सीधा असर दिखायी पड़ता था। हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखा है ''भारतेन्दु युग सामाजिक सुधारों तथा जन–जागरण का युग था। भारतेन्दु की रचनाओं में स्त्री शिक्षा, वर्ण भेद त्याग, अनमेल विवाह निषेध, आदि विषय मिलते हैं। ''भारत दुर्दशा'' नाटक में तत्कालीन सामाजिक दशा पर प्रकाश डाला गया है:–

''जाति अनेकन करी, नीच अरू ऊँच बनायो
खान-पान संबंध सबन सौं बरजि छुड़ायो''

हिन्दी के महत्व पर लिखा उनका दोहा अति प्रचलित है **''निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल''**। स्वामी जी से प्रेरणा प्राप्त कर अनेक परवर्ती महापुरुषों ने हिन्दी के प्रचार प्रसार को गति प्रदान की जिसके परिणाम स्वरूप सन् १९४९ को संविधान सभा ने हिन्दी को भारत संघ की 'राज भाषा' का दर्जा दिया। भारत सरकार (राज भाषा विभाग) की पत्रिका 'राज भाषा भारती'' के एक लेख में आचार्य क्षेमचन्द सुमन लिखते हैं ''स्वातन्त्र्य पूर्व पंजाब का तो हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि में अप्रतिम योगदान था। महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के द्वारा प्रवर्तित आर्यसमाज के सुधारवादी आन्दोलन के कारण वहाँ हिन्दी का जो प्रचार–प्रसार हुआ उसने वहाँ की जनता को हिन्दी लेखन की ओर प्रेरित किया। हिन्दी के प्रमुख कथाकार चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, सुदर्शन, यशपाल, मोहन राकेश तथा श्रीमती रजनी पणिकर इसी प्रान्त की देन हैं।'' हिन्दी के मूर्धन्य पत्रकार श्री बाल मुकुन्द गुप्त, माधव प्रसाद मिश्र भी पंजाबी थे। महात्मा मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) ने ''सद्धर्म प्रचारक'' नामक पत्र के माध्यम से हिन्दी भाषा की अभिवृद्धि में योगदान किया, वहीं गुरुकुल कांगड़ी जैसी संस्था ने हिन्दी के अनेक विद्वान् और पत्रकार दिए। गुरुकुल में प्रशिक्षित प्रो० इन्द्र देव विद्यावाचस्पति, सत्यव्रत सिद्धांतालंकार, भीमसेन विद्यालंकार, धर्मदेव विद्यामार्तण्ड तथा चन्द्रगुप्त वेदालंकार जैसे अनेक यशस्वी लेखक और पत्रकार आर्य समाज ने दिए। महात्मा हंसराज, लाला लाजपत राय तथा लाला देवराज की डी.ए.वी. कॉलेज, नेशनल कॉलेज आदि शिक्षण संस्थाओं का हिन्दी की अभिवृद्धि में प्रचुर योगदान था। देश के महान् स्वतंत्रता सेनानी गणेश शंकर विद्यार्थी ने सन् १९३० को गोरखपुर के अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के १९वें अधिवेशन के अध्यक्ष पद से बोलते हुए कहा था 'स्वामी दयानन्द, आर्य समाज और गुरुकुलों ने हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाने में बड़ा काम किया'' (राजभाषा भारती)। आर्य जगत् के वयोवृद्ध क्रांतिकारी लेखक श्री संतराम बी०ए० जी के विचार उनकी जीवनी ''मेरे जीवन के अनुभव'' से उद्धृत है'' मेरे अन्दर राष्ट्रीय भावना जागृत हुई तो मैंने हिन्दी सीखी। इस विषय में मुझे महर्षि दयानन्द से प्रेरणा मिली है। मेरी धारणा है कि हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है। यह समूचे राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँध सकती है।'' आर्य समाज की विचारधारा के प्रचार का माध्यम हिन्दी है।

शक्ति नगर, सोनभद्र (उ०प्र०)
दूरभाष : ०५४४६-२३४४७८

महर्षि दयानन्द

- आर.सी. प्रसाद सिंह

जब स्वदेशी शब्द दर्शन-योग्य केवल कोष में था
और हर पुरुषार्थ का अवसान चिर-संतोष में था
शान्त-शीतल हो चुकी थी जब तरुण-विद्रोह-ज्वाला
जब विदेशी राजसत्ता-कण्ठ में थी विजय-माला
दिव्य अपराजेय भारत-शक्ति ने तब जो पुकारा,
युग-प्रवर्तक, प्रथम निस्सन्देह वह स्वर था तुम्हारा।
साधना सम्पूर्ण युग की मूर्त पूंजीभूत होकर
आ गई मानो, तुम्हारे रूप में अवधूत होकर
कर गए आचार्य शंकर रिक्त जो इतिहास-काया
धर धुरी युग धर्म की तुमने उसे सार्थक बनाया
मुड़ चली सावेग आर्यावर्त की जो प्राण-धारा,
हे अमर ऋषि, जागरण-उद्घोष था उसमें तुम्हारा।
कर दिया तुमने प्रकाशित वेद को, चिर-लुप्त जो था
दे दिया अधिकार जन-जन को मनन का, गुप्त जो था
खण्ड कर पाखण्डियों को, पोप-लीला ध्वस्त कर दी
एक विद्युत्-शक्ति सारे देश में जीवन्त भर दी
आहिमाचल-सेतु जो गूंजा कभी उन्मुक्ति नारा,
क्रान्ति-कानन-केसरी, वह मेघ-गर्जन था तुम्हारा।
तुम पराजित जाति की नव चेतना के अग्र गायक
पद्-दलित अभिमान की प्रतिशोध-झंझा के विनायक
कुसंस्कारों से छिड़े संघर्ष के निर्द्वन्द्व योद्धा
रक्त की ऊर्जा अजय, तारुण्य के निर्भय पुरोधा
हो गया बलिदान पावन जो पतित का बन सहारा,
ब्रह्मचर्यानल-प्रदीपित वज्र-तन वह था तुम्हारा।
आर्य-संस्कृति और वैदिक सभ्यता के तुम विधाता
एक ईश्वर, एक धार्मिक ग्रंथ के शुचि मंत्र-दाता
काल-कर को तुम सुमण्डित कर गए कोदण्ड बनकर
जब भविष्यत् का चला आग्नेय शर मार्तण्ड बनकर
हिन्द, हिन्दी और हिन्दू जाति का चमका सितारा,
सर्वदा शुभ नाम उसमें है जुड़ा पहले तुम्हारा।
हे विमल स्वामी, परम तत्वज्ञ मुनि, ब्रह्मात्म-ज्ञानी
आर्य संन्यासी, सुधारक, गुरु दयानन्दाभिधानी
राजनीतिक दासता से मुक्त हैं भारत-निवासी
चेतना राष्ट्रीय लेकिन आज भी है देवदासी
स्वप्न भारत-भारती का है अधूरा ही हमारा,
देश के सिर पर चढ़ा है आज भी ऋषि, ऋण तुम्हारा।

महर्षि दयानन्द और विश्व शांति

- श्री आर्यभिक्षु, आर्य वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर

महर्षि जैमिनी के पश्चात् ऋषि परम्परा में स्वामी दयानन्द सरस्वती प्रथम महापुरुष हैं, जिन्होंने शाश्वत सनातन तथा सार्वभौम मानव–धर्म वेद धर्म की दुहाई ही नहीं दी, अपितु उसके लोप होने के परिणाम स्वरूप उत्पन्न संसार के समस्त मत, तन्त्र तथा सम्प्रदायों की विधिवत् समीक्षा की (सत्यार्थप्रकाश ११ से १४ वें समुल्लास तक)। वह स्वयं स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश में लिखते हैं 'ब्रह्मा से लेकर जैमिनी पर्यन्त ऋषि–मुनियों द्वारा अनुमोदित और प्रतिपादित सनातनधर्म ही हमारा धर्म है। इसे मानना व मनवाना अपना अभीष्ट है। किन्तु कोई भी नूतन मत, पन्थ अथवा सम्प्रदाय चलाने की किञ्चित्मात्र भी इच्छा नहीं है।' ऐसा लिखने में उनका हेतु उनके शब्दों में स्पष्ट है। 'सर्व सत्य का प्रचार कर सबको एक मत में करा, द्वेष छुड़ा परस्पर में दृढ़ प्रीतियुक्त कराके सब को सुख लाभ पहुँचाने के लिए मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है।'' इस कथन में उनके हृदय में विश्व–शान्ति के लिए एक ठोस रचनात्मक पुरोगम की स्पष्ट आभा मिलती है।

संसार में अशान्ति के हेतु दो ही मौलिक हेतु हो सकते हैं। प्रथम भोग सामग्री की वितरण व्यवस्था और द्वितीय, भोक्ता का भोग के साथ सम्बन्ध। प्रथम स्थिति का समाधान सामाजिक क्रान्ति तथा राजनैतिक उथल–पुथल से होता रहता है। द्वितीय के लिये स्थान, समय तथा परिस्थिति के आधार पर पुरुष विशेष द्वारा उपस्थित विचार तथा विधि कार्य करते हैं। पहले के विस्तार स्वरूप राजतन्त्र से लेकर लोक तन्त्र तक की व्यवस्थाओं का प्रादुर्भाव हुआ और दूसरे के विस्तार स्वरूप मत, ग्रन्थ तथा सम्प्रदाय के रूप में पारसी, ईसाई, मुसलमान, बौद्ध, जैन इत्यादि आचार पद्धतियों का प्रादुर्भाव हुआ। (जिन्दावस्ता, बाइबिल, कुरान, धम्मपद, त्रिपिटक)। इन्हीं दोनों पाटों के बीच विश्व की शान्ति पिसती रही और आज अपने शिखर पर पहुँच चुकी है। विश्व में अशान्ति के मूल कारणों में दो प्रमुख हैं। राजनीतिक मान्यताओं की रस्सा–कसी और मत–मतान्तरों की संख्या वृद्धि में होड़ की प्रवृत्ति। विश्व के इतिहास में जारशाही और उसका दुःखद अन्त एक ओर है, तो ईसाई मत की ही दो शाखाओं, कैथलिक और प्रोटेस्टेन्ट के मध्य की रक्त–रंजित बीभत्स गाथाएँ दूसरी ओर है। इस प्रकार जब दोनों ओर की स्थिति अत्यन्त भयावह तथा विनाशकारी स्वरूप में विद्यमान थीं तब इस धरा–धाम पर बाल–ब्रह्मचारी, युगपुरुष, क्रान्ति–द्रष्टा भगवान् दयानन्द का प्रादुर्भाव आर्यावर्त की पवित्र ऋषि भूमि में सम्पूर्ण अविद्या तथा अज्ञान का नाश करके विश्व–शान्ति स्थापनार्थ उन्नीसवीं सदी के मध्य में हुआ।

महर्षि दयानन्द दया का था सागर,
जगत की व्यथा का दवा बनने आया।
तिमिर छा रहा था अविद्या का घर-घर,
गगन में दिवाकर नया बनके आया।।

महर्षि ने इस व्यापक अविद्या, अज्ञान तथा सत्य का भेद न करते हुए सिंहनाद किया, ''मेरा अपना मन्तव्य वही है जो सबको तीन काल में एक–सा मानने योग्य है। मेरी कोई अपनी नवीन कल्पना नहीं है, अपितु जो सत्य है उसे मानना और मनवाना और जो असत्य है उसे छोड़ना और छुड़वाना अपना अभीष्ट है।'' इसी सत्य के प्रकाशन संदर्भ में उन्होंने विश्व के समस्त नागरिकों के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक जय घोष दिया– **'अपने देश में अपना राज्य'।** इस प्रकार संसार के समस्त पराधीन राष्ट्रों को एक नूतन चेतना तथा स्फूर्ति इस दिशा में प्राप्त हुई और अपने देश के साथ ही अन्य पराधीन राष्ट्र भी स्वाधीनता के लिए खड़े हो गये। अनेकों ने परिणाम स्वरूप वर्षों की दासता से मुक्ति पाई और आज भी अनेक देश इस दिशा में संघर्षरत हैं। यह सब भगवान् दयानन्द के एक मन्त्र का चमत्कार है। उर्दू के एक कवि ने ठीक कहा है –

तू नहीं, पैगाम तेरा हर किसी के दिल में है।
जल रही अब तक शमा रोशनी महफिल में है।।

महर्षि ने इस दिशा में स्थायित्व लाने के निमित्त एक आन्दोलन का भी सूत्रपात किया– वह था संसार के श्रेष्ठ पुरुषों का संसार के कल्याण के लिए एक वेदी पर उपस्थित होना। इस आन्दोलन को निरन्तर चालू रखने के लिये संगठन का गठन भी किया जिसे :**'आर्यसमाज'** अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषों का संगठन '' Society of the noble men '' कहते हैं। महर्षि ने इस आन्दोलन के तीन चरण निश्चित किये– एक ईश्वर, एक धर्म तथा एक विश्व '' One God, one religion and one world '' संसार में अनेक महापुरुषों ने इस दिशा में अपनी योग्यता तथा क्षमता के अनुसार कार्य किया किन्तु इस मौलिक त्रिसूत्र के अभाव में उनके सम्पूर्ण प्रयास विफल रहे। उदाहरण स्वरूप, मार्क्स का सर्वहारा दर्शन तथा गाँधी जी का सर्वोदय। यहाँ एक ईश्वर से तात्पर्य एक प्राप्तव्य – ''One distinction and one God'' से है। एक धर्म से अभिप्राय एक आचरण–संहिता से है और एक विश्व से अर्थ एक परिवार से है। जिस प्रकार से एक परिवार में रहने वालों का एक आदर्श इसकी प्राप्ति का एक माध्यम अर्थात् सभी साधकों के साधन तथा साध्य का सामञ्जस्य। महर्षि ने इसके लिए तर्क युक्ति, प्रमाण तथा प्रयोग के आधार पर संसार के प्रमुखतम आचार्यों से वार्ता की और अपेक्षित प्रयास भी किया। उनके शब्दों में विश्व की अशान्ति का मूल कारण इस प्रकार के भेदों के माध्यम से उत्पन्न होने वाला घृणा और द्वेष का वातावरण ही है। ''यद्यपि प्रत्येक मत, पन्थ तथा सम्प्रदाय में कुछ–कुछ अच्छी बातें हैं तथापि आचार्यों में परस्पर मतभेद होने के कारण अनुयायियों में मतभेद कई गुणा बढ़कर घृणा और द्वेष की उत्पत्ति करता है। क्या ही अच्छा होता कि सभी आचार्य प्रवर एक स्थल पर बैठकर

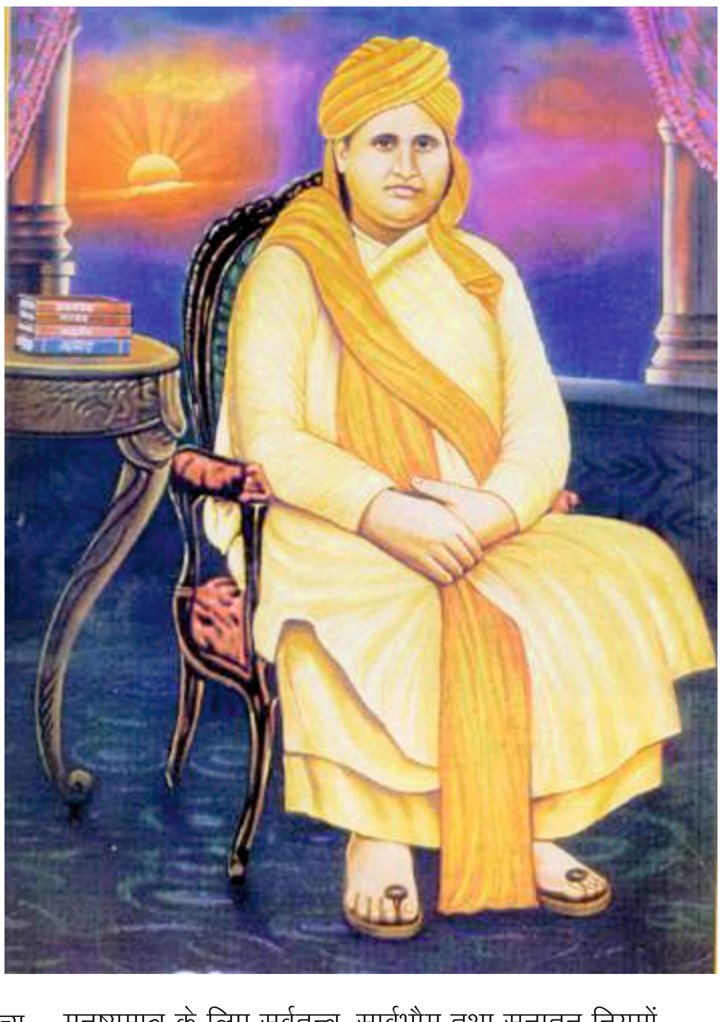

मनुष्यमात्र के लिए सर्वतन्त्र, सार्वभौम तथा सनातन नियमों का संकलन कर पाते, जिससे मानव समाज घृणा और द्वेष से मुक्त होकर श्रद्धा और स्नेह की पवित्र स्थिति को प्राप्त होता।'' उन्होंने चाँदपुर (उत्तर–प्रदेश) में एक धर्म मेला के अन्दर इस प्रकार के विचार–विमर्श की व्यवस्था भी की। उसमें पादरी, मौलाना, पण्डित सभी उपस्थित थे। महर्षि ने तर्क, युक्ति, प्रमाण और प्रयोग से उन सबको सहमत न होते देख अन्ततोगत्वा एक अद्वितीय विधि उपस्थित की। सब अपने–अपने मत के श्रेष्ठ विचार पृथक्–पृथक् पत्रों पर लिखें। पुनः सबको एक साथ एकत्रित किया जाये और जो–जो विचार तथा आचार उपस्थित हों उनमें से सर्वमान्य विचार–आचार एक स्थल पर संकलित कर लिये जावें और हम सब उन पर हस्ताक्षर कर देवें, जिससे यह आचरण संहिता संसार के सभी मनुष्यों के लिए मान्य, व्यावहारिक तथा उपयोगी घोषित हो जावे, और इस प्रकार परस्पर विभिन्न मत मतान्तरों के आधार पर विभाजित मानव समाज एकता के सूत्र में बंधकर विश्व में शान्ति स्थापित कर सके। उपस्थित किसी भी प्रतिनिधि (हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई तथा ब्रह्म–समाज) ने इसका स्वागत अपने क्षुद्र स्वार्थ तथा नेतागिरि के कारण नहीं किया।

महर्षि भौतिक जगत् में भी अर्थ के दूषित वितरण के परिणाम का समाधान बताते हैं जो आज की समस्या का एकमात्र हल है। आज मजदूर जहां एक ओर कम से कम काम करना चाहता है, वहीं दूसरी ओर अधिक से अधिक वेतन चाहता है और इसी प्रकार महाजन जहाँ एक ओर अधिक से अधिक काम लेना चाहता है वहीं दूसरी ओर कम से कम वेतन देना चाहता है। तात्कालिक समाधान के रूप में इस विषम मनोवृत्ति के परिणाम स्वरूप ही मजदूर यूनियन, कर्मचारी संघ तथा मर्चेन्ट एसोसियेशन का विश्व में जाल बिछा दीखता है। समाधान तो ऋषि इसे पूर्णतया उलट देने में मानते हैं। अर्थ क्या हुआ? मजदूर अधिक से अधिक काम करें और कम से कम वेतन लेने की इच्छा रखें और महाजन कम से कम काम लेकर मजदूरों को अधिक से अधिक देने की कामना करें। विश्व-शान्ति के लिए व्यक्ति को कम से कम समाज से लेना होगा और अधिक से अधिक समाज को देना होगा तभी वर्तमान अशान्ति, अनिश्चिन्तता तथा अराजकता का अन्त होगा अन्यथा कदापि नहीं। मुझे कहने दीजिए– आज हमें भोग में बासा– होटल की प्रवृत्ति से हट कर परिवार में पाकशाला प्रवृत्ति में आना होगा। हम जब होटल में भोजन करते हैं तो कम से कम होटल वाले को देकर अधिक से अधिक खा लेना चाहते हैं। किन्तु जब हम परिवार में भोजन करते हैं तो कम से कम खाकर अधिक से अधिक परिवार के अन्य सदस्यों के लिए छोड़ना चाहते हैं। ऐसा मन कब बनेगा ? जब तन के निखार निमित्त दर्पण की भांति हमें मन के सुधार के लिए दर्शन मिलेगा। यह दर्शन जिस आचरण–संहिता में उपलब्ध है वह परमात्मा द्वारा प्रदत्त अपनी प्रजा के निमित्त विधि–निषेधात्मक वेदज्ञान है, जो सम्पूर्ण सृष्टि की अवधि के भीतर (चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष) उपस्थित विश्व के सभी श्रेष्ठतम उपभोक्ताओं मनुष्यमात्र के लिए समान रूप से सुखदायक तथा उपयोगी है। उससे हम न्यूनतम परिश्रम द्वारा अधिकतम सुख की प्राप्ति कर सकते हैं। इसे उपभोग के नियम– लातगयर कवायद '' Laws of Consumption ''कहते हैं। इसके अनुकूल चलकर हम शाश्वत सुख–आनन्द–मोक्ष की प्राप्ति कर सकते हैं। जो मानवमात्र का एकमात्र अभीष्ट लक्ष्य है। इस आचरण–संहिता का प्रमुख भाग कर्मफल मीमांसा कहलाता है और वह इस प्रकार है– दर्शनकारों की व्यवस्था में आयु, जाति तथा भोग मनुष्य को पूर्व जन्म के आधार पर ही मिलते हैं (यहां जाति शब्द का तात्पर्य योनि – पशु, पक्षी, पतंगा, मनुष्य आदि से है)। भोग दो प्रकार के हैं– एक सुखद तथा दूसरा दुःखद। दुःखद भोग में हम किसी का सहयोग प्राप्त कर ही नहीं सकते। कौन होगा ऐसा जो मेरे पचास बेत के दंड में कुछ स्वयं सहन कर मेरा सहयोग करना चाहेगा। किन्तु सुखद भोग में हम किसी को भी अपना भागीदार बना सकते हैं, और कोई भी भागीदार बनने को तैयार हो सकता है। उदाहरणार्थ मेरे पास भोग के पचास आम हैं। हम सब स्वयं भी खा सकते हैं और इनमें से आवश्यकतानुसार तथा इच्छानुसार चार आम खाकर शेष इक्कीस आम किसी को भी खाने को दे सकते हैं। स्वयं सम्पूर्ण खा जाने पर भोग मूलतया समाप्त हो जाता है। किन्तु कुछ खाकर और शेष दूसरों को खिलाकर हम दूसरों को खिलाये हुये आमों के भोग के द्वारा अपने लिये नूतन कर्म का सृजन कर लेते हैं जो हमें पुनः इस जन्म अथवा दूसरे जन्म में मिलेगा। इस दर्शन के प्रचार और प्रसार में प्रत्येक व्यक्ति खाने के चक्कर से निकल कर खिलाने की होड़ में खड़ा हो जायेगा। तब विश्व में अशान्ति का प्रश्न ही नहीं रहेगा और स्थायी शान्ति स्वतः उपस्थित हो जायेगी। आज हम व्यवहार पक्ष में ऐसा मानते हैं– '' Foolishmen invite or wisemen eat '' मूर्ख व्यक्ति खिलाते हैं और बुद्धिमान व्यक्ति खाते हैं। किन्तु स्थिति तब बदल जावेगी और नई लोकोक्ति तैयार होगी– '' Wise men invite and foolishmen eat '' बुद्धिमान व्यक्ति खिलाते हैं और मूर्ख व्यक्ति खाते हैं। परिणाम स्वरूप समस्त मानव समाज एक परिवार की संज्ञा को प्राप्त हो जायेगा जिसका प्रत्येक सदस्य कम से कम उपयोग करके अधिक से अधिक दूसरों के उपभोग निमित्त छोड़ने में अपने सम्पूर्ण विवेक और कौशल को लगा देगा, जिससे विश्व–शान्ति का महर्षि कल्पित रूप साकार हो उठेगा।

''अपनी आवश्यकता से अधिक पर अपना अधिकार मानना सामाजिक हिंसा है।'' इससे बचना ही विश्व-शान्ति का एकमात्र हल है।

ऋषि निर्वाण दिवस पर संकल्प

– डॉ. सुरेन्द्र सिंह कादियाण

इस पूरे प्रकरण में हम सरकारों, राजनीतिक दलों और देशवासियों को इतना दोषी नहीं मानते जितना कि आर्य समाज व उसके नेतृत्व को मानते हैं। कारण, दयानन्द होने का मतलब क्या है इसे न तो आर्य समाज व उसके नेतृत्व ने समझा है और न ही उसे प्रचारित व प्रसारित करने का कोई बड़ा जोखिम उठाया है। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् आर्य समाज का दलगत राजनीति में भाग न लेना एक भारी भूल थी जिसे अब सुधारना लगभग असम्भव है। उसकी दूसरी भारी भूल यह रही कि सत्ता व प्रशासन पर दबाव बनाने का नैतिक दायित्व भी उसने ईमानदारी से नहीं निभाया। आर्य समाज के संगठन की वर्तमान स्थिति यह है कि ऐसा दबाव बनाने में वह सक्षम ही नहीं रह गया है। राष्ट्र व समाज को यदि बदलना है तो आर्य समाज को सीधे जनता के बीच जाकर अलख जगानी होगी, जन-जागरण का मन्त्र फूंकना होगा तभी कायाकल्प का पथ प्रशस्त होगा।

ऋषि वह होता है जिसे सत्य का बोध हो गया हो और उस सत्य को आत्मसात कर जिसने मन, बचन, कर्म में जीना सीख कर परोपकारिता के चरम शिखर पर इस सत्य को व्याख्यात करने में महारत भी हासिल कर ली हो। इस कसौटी पर ऋषिवर दयानन्द खरे उतरते हैं। ब्रह्म के सत्य स्वरूप को जानने के लिए ही उन्होंने भरी जवानी में गृहत्याग कर योग मार्ग का अवलम्बन किया, संन्यास की दीक्षा ली, वेद की कुंजी प्राप्त करने के लिए मथुरा पधारे और अर्जित ज्ञान, वैराग्य और अभ्यास, अनुभूति से लोकमानस को संस्कारित करने का व्रत लिया। इस पथ का अनुसरण करना उस कालखण्ड में सहज नहीं था। कारण, देश राजनीतिक पराधीनता के शिकंजे में जकड़ा हुआ था। धार्मिक जगत में आडम्बर, पाखण्ड, अंधविश्वास और रूढ़ियों का अंधकार व्याप्त था। सामाजिक क्षेत्र में विषम कुरीतियों जात-पात, अस्पृश्यता, वर्गभेद, बाल विवाह, सती प्रथा, असमानता, शोषण, दहेज प्रथा आदि का जाल बिछा हुआ था। शैक्षिक क्षेत्र में मैकाले प्रणीत शिक्षा पद्धति का प्रचलन बढ़ रहा था और नालन्दा, तक्षशिला, उज्जैन के प्रशस्त शिक्षा सूत्रों को भुला दिया गया था। आर्थिक क्षेत्र मे पूरी लूट मची हुई थी क्योंकि सरकार के पास न कोई औद्योगिक नीति थी और न ही कृषि नीति। कहीं अकाल, कहीं बाढ़, कहीं महामारी लेकिन इनसे निबटने को सरकार व प्रशासन लाचार, विवश और बेजान था। इन सब मोर्चों पर एक साथ खड़े होकर मुक्ति संग्राम का आह्वान करना कोई ऋषि आत्मा ही कर सकती थी। ऋषि दयानन्द को इसी अर्थ में भारतीय पुनर्जागरण का पुरोधा, मसीहा और पैगम्बर माना जाता है। इस तथ्य को रोमा-रोल्यां और योगी अरविन्द एक स्वर में स्वीकार करते हैं। आलोचक और विरोधी लाख सवाल खड़ा करें कि दयानन्द को ऋषित्व से क्योंकर मण्डित किया गया लेकिन इस सत्य को भला कौन झुठला सकता है कि ऋषित्व कोई परिधान नहीं है जो किसी के द्वारा किसी को पहनाया जाता हो बल्कि यह तो स्वाभाविक रूप से जीने वाली जीवन शैली है जिसकी जड़ें प्राचीन ऋषि परम्परा से अनुस्यूत हैं। प्राचीन जीवन मूल्यों से अपने को संस्कारित करने का प्रयास दयानन्द ने किया और उसमें सफल हुआ तो इस पर ऐतराज कैसे उठाया जा सकता है?यह तो नियति का पुरस्कार था, आविष्कार था, अजूबा था जो वक्त की जरूरतों को पूर्ण करने के लिए अस्तित्व में आया। उसने अपने संकल्प को जिस जीवंत और सशक्त इच्छा शक्ति के साथ मूर्तिमंत किया क्या उसे देख कर सहज अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि वह वास्तव में कोई ऋषि आत्मा ही थी जिसने अविचल भाव से विरोधियों द्वारा **उडेली धूल-माटी** को प्रसाद समझ कर फांका, तेरह बार दिये विष को अमृत समझ कर पिया, गाली-गलौज मिश्रित आलोचना को विहंसते हुए झेला, झूठे आरोपों की लांछना को सहृदयता से सहन किया क्योंकि उन्होंने समग्र क्रांति का जो बीड़ा उठाया था उसे निर्बल मन: होकर कमजोर कंधों से तो नहीं उठाया जा सकता था। ऋषि दयानन्द के संघर्ष पूर्ण जीवन पर जब हम विहंगम दृष्टिनिक्षेप करते हैं तो पाते हैं कि भारतीय इतिहास में समय-समय पर ऋषि, महर्षि, ब्रह्मऋषि अनेक पैदा हुए लेकिन देव दयानन्द उनमें विरल थे, विशद् थे, विलक्षण थे क्योंकि उनकी प्रवृत्ति, उनका दृष्टिकोण, उनका आचरण सदैव व्यष्टिगत नहीं, समष्टिगत रहा और वे अपने लिए नहीं बल्कि अपने ध्येय के लिए जीये और उसी के लिए मरे। ऐसे अदम्य, साहसी, निडर, कर्मठ, एकनिष्ठ, त्यागी, निष्कलंक, दयालु, परोपकारी आत्मा को भी यदि कोई ऋषि नहीं मानता तो उससे बढ़कर कृतघ्नता क्या अन्य कोई हो सकती है?ऋषि दयानन्द के फैलाये प्रकाश से यदि उल्लुओं की आँखे आज भी चौंधिया जाती हैं तो इसमें दोष दयानन्द का नहीं उनकी आँखों का उनकी रूग्ण मानसिकता व प्रवृत्ति का ही हो सकता है। इस स्थिति के रहते दयानन्द का ऋषित्व शिथिल नहीं हो जाता, न अब तक हुआ ही है।

ऋषिवर दयानन्द ने जिस समग्र क्रान्ति का सूत्रपात किया उससे उनकी एक शाश्वत और चिरंतन छवि का निर्माण हुआ। शास्त्रों का अध्ययन कर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि वेद ही मानवता का कल्याण करने में सक्षम है अत: उन्हें अपना कर ही व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और वैश्विक जीवन को आदर्श रूप में स्थापित किया जा सकता है। वेद के आधार पर वे एक ऐसी मानव आचार संहिता बनाने के पक्षधर थे जिसे सभी पंथ, मत और सम्प्रदाय अपनाकर जीवन यापन कर सकें। शांहजहांपुर जिले में चांदापुर नामक स्थान पर हर वर्ष एक बड़ा मेला लगता था। इस अवसर पर उन्होंने एक बैठक कर इस आचार संहिता का प्रस्ताव रखा। बैठक में सर सैय्यद अहमद खाँ, केशवचन्द्र सेन तथा ईसाइयों के दो प्रतिनिधि उपस्थित थे। इसी प्रकार की एक बैठक दिल्ली दरबार के समय आयोजित की गई थी। ऋषिवर ने देखा कि सभी पक्षों के साम्प्रदायिक आग्रह इतने प्रबल थे कि सामान्य मानव आचार संहिता के प्रस्ताव पर सहमत नहीं हो सके। इस दुराग्रह को राष्ट्रहित में बाधक समझते हुए अन्तत: उन्हें सन् 1875 में आर्य समाज की स्थापना करनी पड़ी और इसी वर्ष सत्यार्थ प्रकाश की रचना कर उन्होंने आम जन को समझाने का प्रयास किया कि पंथों, मतों, सम्प्रदायों, मजहबों की दलदल में धंस कर अध्यात्म और मानवता का पथ प्रशस्त नहीं किया जा सकता। विविध सम्प्रदायों के इतिहास पर, उनके रक्तरंजित इतिहास पर, उनकी कथित मान्यताओं व महत्वाकांक्षाओं पर तथा उनके तुलनात्मक अध्ययन

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

पर यदि जोर दिया जाये निष्कर्ष वही निकलेगा जिस पर ऋषि दयानन्द पहुँचे थे। सन् 1947 के भारत विभाजन पर पूर्वोत्तर भारत में घटी घटनाओं पर और पंजाब में लगभग एक दशक तक दस्तक देते रहे आतंकवाद पर यदि नजर डाली जाये तो हकीकत यही सामने आयेगी कि पंथ, सम्प्रदाय, मजहब, रीलीजन अपने बारे में जो दावे करते हैं वे कितने खोखले व निराधार हैं। अध्यात्म, मानवता, विश्व शांति की बुलंदी का स्पर्श करने में ये कितने असहाय, असक्षम और विफल रहे हैं इसका साक्षी इनका इतिहास रहा है। परिवार, समाज और राष्ट्र का विघटन करने वाले वैश्विक एकता और वैश्विक शांति का समाघोष लगायें तो उन पर कैसे विश्वास किया जा सकता है। ऋषिवर दयानन्द इस रुग्ण सोच को बदलना चाहते थे। सत्यार्थप्रकाश वह दर्पण है जिसके सन्मुख खड़े होकर कोई भी सम्प्रदाय शेखी नहीं बघार सकता सिवाय आर्य समाज और ऋषिवर दयानन्द को अपशब्द कहने के। सत्य का सामना जब प्रचारित तथ्य नहीं कर पाते तो स्थिति ऐसी ही बन जाती है।

ऋषिवर दयानन्द पहले व्यक्ति थे जिन्होंने स्वराज का सुराज का, स्वदेशी का, स्वभाषा का, स्वसंस्कृति का, स्व इतिहास का, स्वाभिमान का समाघोष एक साथ उस समय लगाया जब 1857 का प्रथम स्वाधीनता संग्राम अंग्रेजों द्वारा कुचल दिया गया था और उनका दमन चक्र पूरी निर्ममता व निर्दयता के साथ पूरे देश में चल रहा था और समूचा मानस मण्डल आतंकित, भयभीत, असहाय और मौन हो चुका था। इस मूर्छित, गूंगे और सहमे भारत को ऋषिवर दयानन्द ने संजीवनी पान कराया था। ब्रिटिश साम्राज्य ने ऋषि दयानन्द में एक ऐसा विद्रोही देखा जो उनकी सत्ता को उखाड़ फेंकने का रास्ता भारतवासियों को दिखा सकता था। इसी कारण उसकी गतिविधियों पर पैनी नजर खुफिया विभाग द्वारा रखी जाने लगी थी। दयानन्द और आर्य समाज के रास्ते में बाधाएँ खड़ी करने का सिलसिला इसी कारण शुरू हुआ। ब्रिटिश चिंतक कहने लगे थे कि जहाँ-जहाँ आर्य समाज सक्रिय है वहीं राजद्रोह के शोले अंगारे बनते जा रहे हैं। दयानन्द का बलिदान जोधपुर नरेश और वेश्या नन्हीं का प्रणय-गाथा का परिणाम नहीं था जैसा कि प्रचारित किया जाता रहा है बल्कि उनके बलिदान की आधार भूमि यह थी, ऋषि दयानन्द के सत्यार्थ प्रकाश का द्वितीय संस्करण अंग्रेज शासकों की नजर में छपते-छपते चढ़ चुका था जिसके कुछ अंश इस निष्कर्ष पर ले जाते थे कि दयानन्द ने 1857 के स्वाधीनता संग्राम में स्वयं सक्रिय भूमिका निभाई है अत: वह राजद्रोही है। दयानन्द का बलिदान सन् 1883 में हुआ था, उन्हीं दिनों उन्होंने 'गोकरुणानिधि' पुस्तक लिखी थी जिसमें गोरक्षा की समस्या को गम्भीरता से उठाया गया था, महारानी विक्टोरिया को बढ़ती पशु-हिंसा रोकने के लिए एक ज्ञापन भेजने की योजना उन्होंने बनाई थी जिस पर लाखों लोगों के हस्ताक्षर कराने का अभियान देशभर में चला रखा था और इस निमित्त गो-कृष्यादि रक्षिणी सभाओं का गठन भी पूरे देश में किया जा रहा था। ऋषिवर की इस सक्रियता में भी ब्रिटिश शासकों को राजद्रोह की गंध आ रही थी क्योंकि 1857 के स्वाधीनता संग्राम में गोमांस मिश्रित कारतूसों की अहम भूमिका रही थी। दयानन्द को राजद्रोही मानने की एक अन्य आशंका यह थी कि वे रियासती भारत के हिन्दू राजाओं व सामंतों को स्वाधीनता का पाठ पढ़ा रहे थे। ये वे कारण थे जिन्हें लेकर ऋषिवर दयानन्द की हत्या करने का षड्यन्त्र रचा गया जो सफल रहा। ऋषिवर दयानन्द साहित्य का तलस्पर्शी अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष भलीभांति उभर कर सामने आता है कि सन् 1857 की विफल क्रान्ति ने उन्हें निराश भले किया हो, हताश नहीं किया था। एक राष्ट्रीय योद्धा के रूप में उन्होंने स्वाधीनता की अलख जगाई, ललक पैदा की, स्वाधीनता के लिए एक नई पीढ़ी तैयार की, ब्रिटिश आतंकवाद के कारण उपजे भय को दूर किया, राष्ट्रीय स्वाभिमान को पुन: जाग्रत किया। संचेतना के पुरोधा की यह मुखर भूमिका निभाने वाले अकेले व्यक्ति थे। शताब्दियों की दासता ने जनमानस में स्वाधीनता के प्रति उदासीनता के जो भाव दृढ़ीभूत कर दिये थे उन भावों को तोड़ने का साहसिक प्रयास दयानन्द ने ही दिखाया। वे जानते थे कि पराधीन भारत में भारत की आत्मा सिर नहीं उठा सकती, उसके प्राचीन जीवन मूल्य आदर नहीं पा सकते, उसकी सभ्यता, संस्कृति व इतिहास गौरव प्राप्त नहीं कर सकते, उसका भविष्य उज्ज्वल नहीं हो सकता, आर्थिक रूप से वह स्वावलम्बी नहीं बन सकता, आध्यात्मिक जगत् में वह पुन: विश्व गुरु बनने की गरिमा प्राप्त नहीं कर सकता, औद्योगिक, तकनीकी व कृषि क्षेत्र में आत्म निर्भर नहीं हो सकता और देशवासियों के लिए मूलभूत सुविधाएँ नहीं जुटा सकता। अपनी इस वेदना और पीड़ा को उन्होंने अपने वेद भाष्य अपनी पुस्तकों, अपने प्रवचनों और अपने पत्र-व्यवहार में संजो कर प्रस्तुत किया है।

ऋषिवर दयानन्द एक ऐसे भारत का निर्माण चाहते थे जो जातिवाद से मुक्त हो, साम्प्रदायिकता से मुक्त हो, नशाखोरी से मुक्त हो, पाखण्ड से मुक्त हो, भ्रष्टाचार से मुक्त हो, शोषण से मुक्त हो और नारी उत्पीड़न से मुक्त हो। वे एक ऐसे समाज का निर्माण चाहते थे जिसमें प्रतयेक नागरिक को रोजगार उपलब्ध हो, आवास की समस्या से वह मुक्त हो, प्रत्येक नागरिक को समान शिक्षा उपलब्ध हो, प्रत्येक नागरिक को स्वास्थ्य की गारंटी मिले, प्रत्येक नागरिक को स्वाभिमान से जीने

अगले पृष्ठ पर जारी है

वेदोद्धारक महर्षि दयानन्द

–पं० वेद प्रकाश शास्त्री

महर्षि दयानन्द जिस समय इस संसार में अवतरित हुए, उस समय वेदों का प्रचार लुप्त हो चुका था। पौराणिक विद्वान पुराणों के ही गुणगान में लगे हुए थे। श्रीमद्भागवत की कथाओं का सर्वत्र बोलबाला था। यत्र–तत्र रामायण की कथा भी प्रचलित थी। तान्त्रिक अनुष्ठान, जादू–टोना, टोटका, ताबीज, तन्त्र–मंत्र अपना प्रभाव जमा चुके थे। वेदों के नाम पर यज्ञ में पशुबली का समर्थन किया जाता था। नास्तिक चार्वाक, वाममार्गी एवं एतादृश अन्य मतावलम्बी वेदों को 'गड़रियों' के गीत कहा करते थे। चारों वेदों के कर्त्ता भाण्ड, धूर्त और निशाचर हैं। (सर्वदा सं. चार्वाक दर्शन) ''वेद शास्त्र पुराणानि सामान्य गणिका इव।'' (ज्ञान संकलनी तन्त्र) वेद शास्त्र और पुराण ये सब सामान्य वेश्याओं के समान हैं।'' इसके अतिरिक्त वेदों में जादू–टोना कह कर उनका उपहास किया जाता था। तत्कालीन संस्कृत विद्वानों की पहुँच भी वेदों तक न थी। ''वेदों को हिरण्याक्ष नामक राक्षस पाताल लोक में ले गया। अब धरती पर वेद कहां हैं?'' सदृश वाक्य बोलकर अनेक विद्वान् मन को आश्वस्त कर लेते थे। सायण, महीधर, उव्वट जैसे विद्वानों के भाष्यों को पढ़कर अनेक लोगों की वेदों पर से श्रद्धा जाती रही।

''स्त्रीशूद्रौ नाधीयताम्।। स्त्री और शूद्र वेद न पढ़ें''– के अतिरिक्त स्त्री शूद्रों के प्रति और भी कठोर शब्दों का प्रयोग किया गया–

अथाहास्य वेदमुपश्रृण्वतः त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रपरि पूर्णम्, उदाहरणे जिह्वाच्छेदः धारणे शरीरभेदः।। गौतम स्मृति द्वादशोऽध्यायः

शूद्र यदि वेद को सुन ले तो राजा शीशे और लाख से उसके कान भर दे, वेदमंत्र का उच्चारण करने पर उसकी जिह्वा काट डाले और जो वेद को पढ़े तो शरीर को छेदन करे।

न शूद्राय मतिं दद्यात् नोच्छिष्टं न हविष्कृतम्।
न चास्योपदिशेत् धर्मं न चास्य व्रतमादिशेत्।।

वशिष्ठ स्मृति अ.१८

शूद्र को ज्ञान, उच्छिष्ट साकल्य न दे और धर्मोपदेश तथा व्रत का उपदेश भी शूद्र को देना उचित नहीं।

ढोल गंवार शूद्र पशु नारी।
ये सब ताड़न के अधिकारी।।

तुलसीदास की यह उक्ति तो सर्वप्रसिद्ध है ही।

भेदभाव से परिपूर्ण इन विषम परिस्थितियों में महर्षि दयानन्द का प्रादुर्भाव हुआ। गुरु विरजानन्द से व्याकरण एवं वेदादिशास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करके वह कार्यक्षेत्र में उतर पड़े। वेदों का प्रचार ही उनका परम लक्ष्य था। उन्होंने सभी को वेद

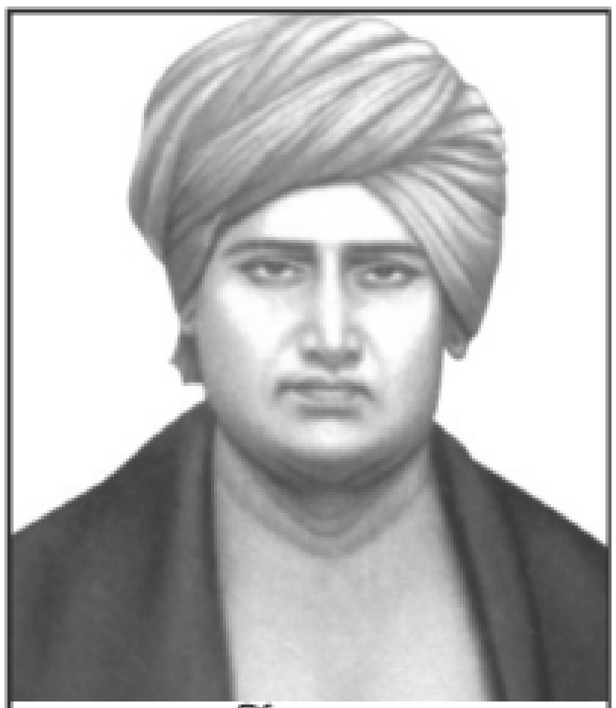

महर्षि दयानन्द

पढ़ने का अधिकार दिया। वह 'सत्यार्थ प्रकाश' के तृतीय समुल्लास में लिखते हैं–

''आजकल के सम्प्रदायी और स्वार्थी ब्राह्मणादि जो दूसरों को विद्या सत्संग से हटा और अपने जाल में फंसा के उनका तन–मन–धन नष्ट कर देते हैं और चाहते हैं कि जो क्षत्रियादि वर्ण पढ़कर विद्वान् हो जायेंगे तो हमारे पाखण्ड जाल से छूट और हमारे छल को जान कर, हमारा अपमान करेंगे।''

स्त्रीशूद्रौ नाधीयताम्' का उत्तर देते हुए ऋषि कहते हैं– सब स्त्री और पुरुष अर्थात् मनुष्य–मात्र को पढ़ने का अधिकार है। तुम कुआ में पड़ो और श्रुति तुम्हारी कपोल कल्पना से हुई है। किसी प्रामाणिक ग्रन्थ की नहीं। और सब मनुष्यों को वेदादि शास्त्र पढ़ने, सुनने के अधिकार का प्रमाण यजुर्वेद के छब्बीसवें अध्याय में दूसरा मन्त्र है–

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्म राजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय।।

परमेश्वर कहता है कि जैसे मैं सब मनुष्यों के लिए इस कल्याण अर्थात् संसार और मुक्ति के सुख देनेहारी ऋग्वेदादि चारों वेदों की वाणी का उपदेश करता हूँ वैसे तुम भी किया करो। हमने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अपने भृत्य वा स्त्री आदि और अति शूद्रादि के लिए भी वेदों का प्रकाश किया है।

क्या परमेश्वर शूद्रों का भला करना नहीं चाहता? क्या ईश्वर पक्षपाती है कि वेदों को पढ़ने सुनने का शूद्रों के लिए निषेध और द्विजों के लिए विधि करे? जो परमेश्वर का अभिप्राय शूद्रादि के पढ़ाने सुनाने का न होता तो इनके शरीर में वाक् और श्रोत्र इन्द्रिय क्यों रचता? जैसे परमात्मा ने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य और अन्नादि पदार्थ सबके लिए बनाए हैं वैसे ही वेद भी सबके लिए प्रकाशित किए हैं।

स्त्रियां भी वेद पढ़ें। देखो श्रौतसूत्रादि में–

इमं मन्त्रं पत्नी पठेत्।।

अर्थात्– ''स्त्री यज्ञ में इस मन्त्र को पढ़े। जो वेदादि शास्त्रों को न पढ़ी होवे तो यज्ञ में स्वरसहित मंत्रों का उच्चारण संस्कृत भाषण कैसे कर सके? भारतवर्ष की स्त्रियों में भूषण गार्गी आदि वेदादि शास्त्रों को पढ़ कर पूर्ण विदुषी हुई थीं।''

पशुवध के बारे में महर्षि दयानन्द का कहना है–

''देखो! जब आर्यों का राज्य था तब महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे।''

धूर्तता करके वेदों के नाम से भी वाममार्ग की थोड़ी–थोड़ी लीला चलाई–

वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति।
न मांस भक्षणे दोषो न च मैथुने।।

'यज्ञ में मांस खाने में दोष नहीं' ऐसी पामरपन की बातें वाममार्गियों ने चलाई हैं। उनसे पूछना चाहिए जो वैदिकी हिंसा हिंसा न हो तो तुझे और तेरे कुटुम्ब को मार के होम कर डालें तो क्या चिन्ता है? 'मांस भक्षण करने, मद्य पीने, परस्त्री गमन करने आदि में दोष नहीं है', यह कहना छोकड़ापन है। क्योंकि बिना प्राणियों के पीड़ा दिए मांस प्राप्त नहीं होता और बिना अपराध के पीड़ा देना धर्म का काम नहीं। मद्यपान का सर्वथा निषेध ही है। क्योंकि अब तक वाममार्गियों के बिना किसी ग्रन्थ में नहीं लिखा किन्तु सर्वत्र निषेध है। और बिना विवाह के मैथुन में भी दोष है। इसको निर्दोष कहने वाला सदोष है। ऐसे–ऐसे वचन भी ऋषियों के ग्रन्थ में डाल के कितने ही ऋषियों, मुनियों के नाम से ग्रन्थ बना कर गोमेध, अश्वमेध नाम के यज्ञ भी कराने लगे थे।

घोड़े, गाय आदि पशु तथा मनुष्य मार कर होम करना कहीं नहीं लिखा। केवल वाममार्गियों के ग्रन्थों में ऐसा लिखा है। किन्तु यह भी बात वाममार्गियों ने चलाई। और जहां–जहां लेख है वहां भी वाममार्गियों ने प्रक्षेप किया है।''

पिछले पृष्ठ का शेष

ऋषि निर्वाण दिवस पर संकल्प

की सुरक्षा प्राप्त हो, प्रत्येक व्यक्ति को सस्ते व त्वरित न्याय की सुविधा प्राप्त हो और उसका सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक स्तर पर शोषण न हो। राष्ट्र निर्माण और समाज निर्माण का यह एक ऐसा आदर्श है जो आजादी मिलने के छियासठ वर्ष बाद जाकर भी पूरा नहीं हो पाया है। ईमानदारी से देखा जाये तो स्थिति ब्रिटिश भारत से भी कहीं अधिक भयावह बन चुकी है। आरक्षणवादी राजनीति ने जातिवाद व सम्प्रदायवाद को ठोस आधार प्रदान किया है, आजादी मिलने के बाद भी देश में छोटे-बड़े हजारों साम्प्रदायिक दंगे हो चुके हैं जिनमें अधिकांशत: राजनीति से प्रेरित रहे हैं, माँसखोरी व शराबखोरी बेतहाशा बढ़ी है, टेलीविजन के कारण गुरुडम व पाखण्ड का प्रचार-प्रसार द्रुत गति से बढ़ा है, भ्रष्टाचार चरम पर पहुँच चुका है, नारी आज भी उत्पीड़न की शिकार है, दलित, आदिवासी, तथा, पिछड़ा वर्ग आज भी शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक शोषण, विषमता और असमानता का शिकार है। करोड़ों नौजवान बेरोजगारी से जूझ रहे हैं, करोड़ों के पास रहने को अपना घर नहीं है, लाखों बच्चे अनेक कारणों से शिक्षा से वंचित हैं, सरकारी अस्पताल मरीजों के लिए कम पड़ गये हैं, कोई भी परिवार पूरी तरह अपने को सुरक्षित महसूस नहीं करता, न्याय व्यवस्था इतनी लचर है कि दो करोड़ मामले वर्षों से लम्बित पड़े हुए हैं। देश में अराजकता, अशांति, लूट-खसोट पैदा होने के ये ठोस कारण किसी भी समय भयावह रूप ले सकते हैं। हर राष्ट्रीय व सामाजिक समस्या का समाधान वोट बैंक की राजनीति को सामने रखकर निकालने की मानसिकता जब जोर पकड़ लेती है तो स्थिति और अधिक विकट बनने लगती है। दुर्भाग्य से देश इसी दिशा में बढ़ता दिख रहा है। दयानन्द को न समझने व न अपनाने का ही इसे स्वाभाविक परिणाम माना जा सकता है। स्वाधीनता का अर्थ उच्छृंखलता, उदण्डता और मनमानी मान लिया गया है, शासक और प्रशासक अपने को जनता का प्रतिनिधि अथवा लोकसेवक न मानकर लोकनायक और नृशंस सत्ताधारी की भूमिका में मुखर करने लगे हैं अत: स्वराज लूटराज की ओर पलायन करने लगा है। काले धन की समानान्तर व्यवस्था देश में दृढ़ीभूत होती जा रही है। ऐसी स्थिति में किसी भी समाज व राष्ट्र का आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विकास अवरुद्ध होने लगता है। भारत में न संसाधनों की कमी है और न ही उत्पादन की फिर भी यहाँ बेरोजगारी क्यों है?लाखों बच्चे भूख व कुपोषण का शिकार होकर क्यों मर जाते हैं?देश का अन्नदाता किसान कर्ज में डूब कर आत्महत्या क्यों कर लेता है?देश की एक तिहाई जनता गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने को क्यों विवश है?व्यवस्था के निक्कम्मेपन का इससे बढ़कर मुखर प्रमाण और क्या हो सकता है?वोट बटोरने के लिए अंतिम वर्ष में खजाने का मुख खोल देने से संदेश यह जाता है कि सरकार जनता को घूस देकर वोट बटोरना चाहतीहै। इस तरह की मानसिकता राष्ट्रघाती ही नहीं समाजघाती भी है। भ्रष्टाचार को स्वीकार की यह कोशिश किसी भी दृष्टि से उचित नहीं कही जा सकती। यह कोशिश देश व समाज को अराजकता की ओर धकेलेगी। राष्ट्र ने दयानन्द को समझा होता और आर्य समाज के दर्शन को अपनाया होता तो यह स्थिति पैदा न हुई होती। स्वाधीनता आन्दोलन केवल कांग्रेस व समाजवादियों ने नहीं लड़ा था आर्य समाजियों की भी बराबर की भूमिका उसमें रही थी। यह बात अलग है कि कांग्रेसियों और समाजवादियों की तरह आर्य समाजियों ने सत्ता का मोह नहीं पाला और दलगत राजनीति से आर्य समाज ने अपने को लगभग विलग ही रखा है लेकिन आजादी के जो अर्थ और मकसद गत 66 वर्षों में बदल दिये गये हैं उससे निश्चय ही ऋषिवर दयानन्द की आत्मा अपने को क्षुब्ध महसूस कर रही होगी। इसमें कहीं न कहीं कुछ दोष आर्य समाज का भी रहा होगा जो मौनद्रष्टा बनकर इस खिलवाड़ को सहन करता रहा।

इस पूरे प्रकरण में हम सरकारों, राजनीतिक दलों और देशवासियों को इतना दोषी नहीं मानते जितना कि आर्य समाज व उसके नेतृत्व को मानते हैं। कारण, दयानन्द होने का मतलब क्या है इसे न तो आर्य समाज व उसके नेतृत्व ने समझा है और न ही उसे प्रचारित व प्रसारित करने का कोई बड़ा जोखिम उठाया है। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् आर्य समाज का दलगत राजनीति में भाग न लेना एक भारी भूल थी जिसे अब सुधारना लगभग असम्भव है। उसकी दूसरी भारी भूल यह रही कि सत्ता व प्रशासन पर दबाव बनाने का नैतिक दायित्व भी उसने ईमानदारी से नहीं निभाया। आर्य समाज के संगठन की वर्तमान स्थिति यह है कि ऐसा दबाव बनाने में वह सक्षम ही नहीं रह गया है। राष्ट्र व समाज को यदि बदलना है तो आर्य समाज को सीधे जनता के बीच जाकर अलख जगानी होगी, जन-जागरण का मन्त्र फूंकना होगा तभी कायाकल्प का पथ प्रशस्त होगा। लेकिन इस दिशा में भी कदम उठाने से पूर्व आर्य समाज को अपने गिरेबान में झांकना होगा कि क्या ऐसा कर पाने में भी वह सक्षम है अथवा नहीं। आर्य समाज ही क्या, कोई भी संगठन दमदार तब बनता है जब उसका नेतृत्व दमदार हो, नेतृत्व की नीयत दमदार हो और संगठन की नीति दमदार हो। ठोस नेतृत्व, नीयत व नीति से ही किसी संगठन की नीयत दमदार बनती है। आर्य समाज में नेतृत्व, नीयत व नीति तीनों का अकाल पड़ा हुआ है। आर्य समज का शीर्ष संगठन सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा है जो आज तीन गुटों में विभाजित है। तीनों गुट दिल्ली हाई कोर्ट द्वारा स्थापित तीन रिटायर्ड जजों के पैनल से चुनाव की उम्मीद बांधे बैठे हैं। उम्मीद बांधे सात साल हो गये हैं, इतने ही साल और निकल जायें तो भी आश्चर्य नहीं। कारण, प्रान्तों में भी दो-दो, तीन-तीन प्रतिनिधि सभाएँ अस्तित्व में आकर आपस में लड़-झगड़ रही हैं, कोर्ट कचहरी जा रही हैं। यह स्थिति भी सार्वदेशिक सभा के चुनाव व गठन में बाधक बनेगी। इस स्थिति के रहते आर्य समाज के केन्द्रीय व प्रान्तीय संगठन का बंटाधार होना निश्चित है। सक्षम नेतृत्व के अभाव में ही यह स्थिति पैदा नहीं हुई है बल्कि अच्छी नीयत व नीति का अभाव भी इसका कारण रहा है। सबसे बड़ी कमी मैं यह मानता हूँ कि आर्य समाज की चुनाव पद्धति पूरी तरह भ्रष्ट और आउट ऑफ डेट हो चुकी है जो आर्य समाज का सत्यानाश कर रही है। अगला चुनाव भले ही अदालत की देखरेख में क्यों न हो जाये लेकिन व्यवस्था में जो बिगाड़ आ चुका है वह सुधरने वाला नहीं है।

महर्षि दयानन्द का दर्शन एवं राष्ट्रीय एकता

– डॉ. किरन श्रीवास्तव

कवि और साहित्यकार युगदृष्टा होता हैं भविष्य की घटनाओं एवं रेखाओं का वह पूर्ण संकेत करता है। महर्षि दयानन्द ने भी यही किया था। उन्होंने भारतीय मनीषा को नवजीवन, स्फूर्ति और प्रेरणा प्रदान की, तथा वेद-ज्ञान के सार्वभौम प्रसार से सत्य को उजागर कर दिखाया, जिसे उनके पूर्व भाष्यकार नहीं कर सकें थे। महर्षि ने अपने समय से नये युग को जन्म दिया और युग प्रवर्तक बने। वैदिक धर्म का शंखनाद विश्व पर्यन्त निनादित किया, उपनिषदों की दिव्य वाणी मानव मात्र को सुनाई और वैदिक ज्ञान का गंगाजल पिलाकर सुधीजनों की प्यास बुझाई।

आज जिस समय देश में विघटनकारी प्रवृत्तियों से राष्ट्रीय एकता को खतरा उत्पन्न हो रहा है, इस समय हम महर्षि दयानन्द के सन्देश की उपयोगिता को स्वीकार कर सकते हैं। देश की एकता और अखण्डता के विषय में उनका चिन्तन कितना सार्थक रहा है, यह उनकी रचनाओं से स्पष्ट है। अतः उनके साहित्य एवं रचनाओं का अध्ययन-मनन तथा युग के सन्देश को हृदयंगम करना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। महर्षि दयानन्द त्याग और वैराग्य के अवतार स्वरूप थे। जिस परम वैराग्य से, जिस गहरी तत्परता से और जिस उच्च भाव से उन्होंने अपने सम्पत्तिशाली पितृगृह का परित्याग किया, वह उनके त्यागभाव का परिचायक, प्रमाण और उनकी विशुद्ध वैराग्य विशेषता का सूचक है।

महर्षि दयानन्द ने सम्पूर्ण मानवता के लिए पूरे विश्व में फैली संकीर्णताओं और अन्धविश्वासों से ऊपर उठकर व्यापक सुधार की दिशा दी। उन्होंने अपने विचार का आधार वेद को बनाया। क्योंकि वेद किसी व्यक्ति की मनमानी रचना नहीं सिद्ध हो सकती है और ना ही उसकी शिक्षाओं को किसी काल विशेष या देश विशेष से सम्बद्ध कर सीमित किया जा सकता है। वे सार्वभौम और सार्वकालिक हैं। महर्षि दयानन्द ने यह अनुभव किया था कि वेद ही एकमात्र ऐसा बिन्दु है, जहां सभी मत-मतान्तर मिल सकते हैं। वास्तव में वेद भी ईश्वर स्वरूप ही है। क्योंकि वेद ईश्वर से ही प्रकट हुए हैं। ईश्वर प्राप्ति का साधन भिन्न हो सकता है, परन्तु सबके बीज, आधार, प्रकाशक, स्वामी, शासक एक ईश्वर ही है। भले ही रुचि, योग्यता और श्रद्धा विश्वास की विभिन्नता के कारण उनकी उपासना में भेद हो जाए, तत्व में कोई भेद नहीं है। क्योंकि परिणाम में सभी उपासनाएं एक हो जाती हैं। जैसे भूख सबकी एक ही होती है और भोजन करने पर तृप्ति भी सबको एक ही होती है पर भोजन की रुचि सबकी अलग-अलग होने के कारण भोज्य पदार्थ अलग-अलग होते हैं और जैसे मनुष्यों के वेश-भूषा, रहन-सहन, भाषा आदि तो अलग-अलग होते हैं पर रोना और हंसना एक ही होता है और सुख-दुःख सबको समान ही होते हैं, वैसे ही भगवत्प्राप्ति का सुख और अप्राप्ति का दुख सभी को एक समान ही होता है। उपासना के आरम्भ में भाव और योग्यता की प्रधानता होती है और अन्त में तत्व की प्रधानता होती है। भाव और योग्यता तो व्यक्तिगत हैं, पर तत्व व्यक्तिगत नहीं प्रत्युत सर्वगत हैं।

महर्षि दयानन्द ने वेद ज्ञान और वेद स्वाध्याय को परम धर्म के रूप में मान्यता प्रदान किया है। उनका कहना था कि वेदों में जीवन के गहनतम अध्ययन, मनन, चिन्तन तथा व्याहारिक ज्ञान का पूर्णरूपेण निरूपण है और वेदाध्ययन के पश्चात ही व्यक्ति सुख शांति पूर्वक जीवन व्यतीत कर सकता है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए महर्षि ने सन् 1857 में आर्य समाज की स्थापना की।

यहां सर्वप्रथम इस पर विचार करना है कि महर्षि का दर्शन क्या है? वास्तव में दर्शन शब्द का अर्थ या निर्वचन इस प्रकार किया जा सकता है- दृष्टिरेव दर्शनम (विशिष्ट) दृष्टि अर्थात विशिष्ट मत ही दर्शन है। दूसरा निर्वचन इस प्रकार है-दृश्यते अनेन इति दर्शनम" अर्थात जिस साधन से परमतत्व को देखा जाए उसे दर्शन कहते हैं। यहां पर महर्षि दयानन्द के दर्शन को एवं राष्ट्रीय एकता तथा अखण्डता में उसकी उपादेयता को साथ-साथ निरूपित किया गया है। वास्तव में दर्शन का आधार तर्क है। अतः तर्क द्वारा ही उनके सिद्धान्तों की उपयोगिता को सिद्ध करने का प्रयास किया गया है।

महर्षि दयानन्द का मत था कि राष्ट्रीय एकता को दृढ़ करने के लिए किसी एकांगी उपाय से काम लेना सार्थक नहीं हो सकता है। जब तक समाज की सर्वांगीण उन्नति नहीं होगी तब तक समाज को सुरक्षित व विकसित करना सम्भव नहीं है। क्योंकि समाज की उन्नति व विकास पर ही राष्ट्र की उन्नति व विकास निर्भर है। महर्षि दयानन्द ही ऐसे प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने धार्मिक क्षेत्र में क्रान्ति का सूत्रपात किया और उसे सफलता के शिखर पर पहुंचाया, क्योंकि धार्मिक भावना तथा सामाजिक भावना के सहचर्य से ही एकता की भावना का निर्माण हो सकता है। महर्षि ने उन्हीं दोनों भावनाओं को विकसित किया। वास्तव में जिस राष्ट्रीयता की हम रक्षा करना चाहते हैं, वह अपने साहित्य, संस्कृति एवं इतिहास की भूमिका के बिना सम्भव नहीं है।

महर्षि दयानन्द की दृष्टि दूरदर्शी है यह बात उनकी कृतियों एवं रचनाओं में स्पष्ट झलकती है। उनके धर्म में समभाव था वे सत्य को स्वीकार करने की प्रेरणा सबको देते थे। उनका सभी प्रकार के लोगों से सम्पर्क था। इसका सबसे सटीक उदाहरण तब मिलता है जब 1857 में उन्होंने आर्य समाज की स्थापना बम्बई में की थी, तो उसमें प्रमुख सहायक मुसलमान थे, जिन्होंने उस समय आर्य समाज के भवन निर्माण में 5100/- रुपये का योगदान दिया था। भले ही कोई उनका शिष्य बन जाए लेकिन उस समय उनके मत एवं धर्म से सभी सहमत थे।

राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता के लिए निःस्वार्थ भावना अति आवश्यक है। अध्ययन, तप, दान जैसी उदात्त धार्मिक प्रवृत्तियों का अनुष्ठान भी यदि स्वार्थ के लिए किया जाता है, तो वे आसुरी सम्पदा को ही उत्पन्न करती है। दैवी सम्पदा प्राप्त करने के लिए लोकमंगल की कामना से सत्य का ही सहारा लेना पड़ता है। महर्षि ने लोकमंगल के लिए ही आर्य समाज को चलाया था जिसका उद्देश्य था समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करना और समाज को सत्य का आभास कराना। महर्षि का कहना था कि आज धर्म के नाम पर अधर्म हो रहा है, जबकि धर्म से कल्याण होना चाहिए। वास्तव में धर्म और सत्य पर्याय है। सत्य धर्म का रूप है और धर्म सत्य का, यही वेदों का विषय भी है। उनका कहना है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है तथा उसी के द्वारा मनुष्य को सत्यासत्य का ज्ञान होता है। वे लिखते हैं :-

"जो ईश्वरोक्त सत्य विद्याओं से युक्त, ऋक् संहितादि चार पुस्तक हैं, जिनसे मनुष्य को सत्यासत्य का ज्ञान होता है उसे वेद कहते हैं।"

उन्होंने वेदों की उत्पत्ति के बारे में "सत्यार्थ प्रकाश" के सप्तम् समुल्लास पृ. 144 पर लिखा है- "प्रथम सृष्टि की आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा इन ऋषियों के आत्मा में एक-एक वेद का प्रकाश किया।"

इसके आगे वे लिखते हैं :-

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्मसनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम्।।

"जिस परमात्मा ने आदि सृष्टि में मनुष्यों को उत्पन्न करके अग्नि आदि चारों महर्षियों द्वारा चारों वेद ब्रह्मा को प्राप्त कराए उस ब्रह्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा से ऋक्, यजुर, साम और अथर्ववेद का ग्रहण किया।"

अतः ईश्वर द्वारा प्रकाशित होने के कारण वेद सत्य हैं। वेद की शिक्षा का पुनः प्रचार होना अति आवश्यक है, ऐसा मानकर महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना की और वेद को आधार बनाकर उसी के अनुसार जीवन यापन की शिक्षा दी।

Through Remembrances

Maharishi Dayanand Saraswati

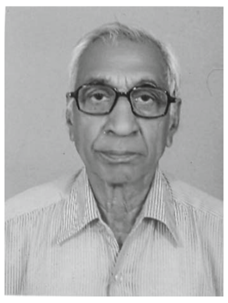

1. Maharishi Dyanand - On Deepavali Day Known as a Nirvaan Divas was celebrated in all the Arya Samajistic functions in India and abroad.

Actually, his passing away from this world was regarded through this satisfaction that the world has begun to return to the Vedas-the heartiest will of Maharishi Dayananad Saraswati, otherwise it was a great loss that Swami Dayananad is no more with us. Even then, his ideology, comprising God, Spirit and nature (Traitwad), is unparalelled and that is logically tested on the Vedas.

Above all, he wanted to see Bharat as an independent country in all respects that is Economically, Technolgically, Socially and spiritually.

From Ist to 15th November Jan Chetna Yatra took place to highlight the ideology of Maharishi Dayanand. He was a staunch advocate to women who give birth to men. Even Gandhi Ji drew the idea of women's regeneration from Maharishi Dayanand. Maharshi Ji was the first supporter of Girls' education. He came forward to defend the case of women. So why is there killing of girl's entity from the woman's womb. It is crime as well as a sin.

2. J. L. Nehru - The Birth Anniversary of Pt. Nehru was celebrated on 14th November as 'Universal Children's Day'. This great Architect of modern India whom we lovingly call 'Chacha Nehru' was born on this day in Allahabad.

He was a great political fighter. He brought about the 'Punch sheel' in establishing peace and sympathy, love and harmony among the countries of the world. He was called as a bridge between east and west. He had a balancing attitude. 'Shanti Poorvak Mil Kar Chalo' was his slogan. And it resembles the Vedic tune.

Nehru's patriotic feelings were fired by Rowlatt Act and Jaliyan-wala Bagh Tragedy and he plunged into the freedom Movement of India. 'Quit India Resolution' against Britishers was passed under his leadership.

Besides it he was a great writer. He wrote a famous book named 'Discovery of India'.

3. Indira Gandhi - His only daughter Mrs. Indira Gandhi was a brave International figure. On 19th of November her birthday falls. Actually she and her father Nehru were regarded as Architects of Modern India. Under their leadership India proved herself to be the country of the east as east gives light to the west. Mrs. Indira Gandhi always tuned with the ideology of Maharishi Dayanand who dreampt that India must be independent regarding the science, technology and Architecture.

4. Lala Lajpat Rai. - The day on 17th of November is regarded as 'Balidaan Divas'. He was a great patriot and a staunch arya Samaji and a disciple of Maharishi Dayanand.

He was a great orator who influenced the youths and highlighted their attitude towards patriotism. Due to his fearlessness he was called 'Punjab Kesari'. The Indian revolutionary youths were very happy to have his company and message. Sirdar Bhagat Singh, Raj Guru and Sukhdev were staunch lovers of his ideology.

Lala Lajpat Rai opposed the coming of Siman commission. He was arrested by the English Govt. Under the Lathi charge he was badly wounded. His fearless words, however, were of great enthusiasm-'Every stroke of every staff on my body will certainly prove themselves as the aching nails thrust into the coffin of British empire'.

And this valiant son of Bharat Mata and the courageous follower of Swami Dayanand closed his eyes on 17th November at the age of 64. But his bold words will always be floating in the air to give direction to the young generation at present and in the future.

B.R. Sharma Vibhakar

महर्षि दयानन्द के स्त्री शिक्षा विषयक विचार

- डॉ० (श्रीमती) इन्दु शर्मा,
प्रोफेसर, संस्कृत एवं प्राच्यविद्या संस्थान, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

हमारी संस्कृति के अनुसार इस सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के मूल में जो महाशक्तियां विद्यमान हैं उन्हें पुरुष और प्रकृति के नाम से जाना जाता है। वेदान्तवादियों के अनुसार उन्हें ब्रह्म और माया कहा जाता है। जबकि तन्त्रविद्या के प्रणेताओं ने उन्हें शिव और शक्ति के नाम से अभिहित किया है। पुरुष और नारी इन्हीं दोनों शक्तियों का व्यष्टि रूप माने जाते हैं। यही कारण है कि हमारी संस्कृति में ईश्वर की कल्पना अर्धनारीश्वर के रूप में की गई है। जब तक, पुरुष स्त्री को सच्चे अर्थों में मनसा, वाचा, कर्मणा अपनी अर्धांगिनी स्वीकार नहीं करता तब तक वह पुरुष की संज्ञा का पात्र नहीं हो सकता। हमारी परम्परा के अनुसार यज्ञ जैसे पुनीत कार्यों में भी पति और पत्नी दोनों की उपस्थिति अपेक्षित है परन्तु दुर्भाग्य की बात है कि वेदमन्त्रों के अर्थ का अनर्थ करने वाले कुछ स्वार्थी तत्वों ने नारियों को वेदमन्त्रों के अध्ययन तक के अधिकार से वंचित करने का दुस्साहस किया। वे यह भूल गए कि ऋषिकाओं द्वारा आत्मसात् की जाने वाली ऋचाओं के अध्ययन के बिना वेद का पूर्ण ज्ञान असंभव है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि वैदिक काल में नारियों को मात्र वेदाध्ययन का ही अधिकार नहीं था अपितु वे मन्त्रद्रष्ट्री बनने की भी अधिकारिणी थीं। यही युग था जब जीवन के हर क्षेत्र में पुरुष और नारी की सहभागिता और सहकारिता का समारंम्भ हुआ।

स्वामी दयानन्द के नारी–शिक्षाविषयक विचार पूर्णरूपेण तत्सम्बन्धी वैदिक मान्यताओं से प्रेरित ही नहीं अपितु निःसृत भी हैं। पूना प्रवचनमाला के तृतीय प्रवचन में स्त्रीशिक्षा सम्बन्धी अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने वर्तमान समाज से आग्रह किया है कि यदि वे सच्चे अर्थों में वैदिक काल में स्त्रीशिक्षा को प्राप्त महत्व से परिचित होना चाहते हैं तो उन्हें आर्य लोगों के इतिहास की ओर देखना चाहिए, जिसमें स्त्रियों के आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत के पालन का उल्लेख मिलता है। उनके उपनयन और गुरु–गृह में वास के संस्कारों की चर्चा उपलब्ध होती है। इस सत्य की सिद्धि के लिए उन्होंने गार्गी, सुलभा, मैत्रेयी, कात्यायनी आदि विदुषियों का उदाहरण दिया है जो बड़े–बड़े ऋषियों एवं मुनियों की शंकाओं का समाधान करती थीं। इसके अतिरिक्त ऐसी अन्य बहुत सी ऋषिकाएं हैं जो मन्त्रों को आत्मसात् करने में सफल रहीं। वस्तुतः स्वामी दयानन्द ने स्त्रीशिक्षा की आवश्यकता का जो महत्व सिद्ध किया है वह सर्वथा वेदसम्मत है।

स्वामी जी से पहले स्त्रीशिक्षा का प्रचार लगभग लुप्तप्राय हो गया था। **'स्त्रीशूद्रौ नाधीयातामिति श्रुतेः'** की भ्रान्ति लगभग प्रचलित हो चुकी थी, स्वामी जी इसके पक्षधर नहीं थे। उन्होंने इसका विरोध करते हुए कहा था कि शिक्षा मनुष्यमात्र का अधिकार है। जो लोग स्त्रियों के पढ़ने का निषेध करते हैं वे सर्वथा मूर्ख, स्वार्थी और निर्बुद्धि हैं। स्वामी जी ने बालक और बालिकाओं की शिक्षा की अनिवार्यता और उन्हें शिक्षा से वंचित रखने के लिए उनके माता–पिता की दण्डनीयता का समर्थन करते हुए लिखा है– ''इसमें राजनियम और जातिनियम होना चाहिए कि पांचवें और आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लड़के और लड़कियों को घर पर न रखे। पाठशाला में अवश्य भेज देवें, जो न भेजें वे दण्डनीय हों।''[१] उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि राजा को ऐसा यत्न करना चाहिए जिससे सब बालक और बालिकाएं ब्रह्मचर्यपूर्वक रहते हुए विद्यायुक्त होकर समृद्धि को प्राप्त हों तथा सत्य, न्याय और धर्म का निरन्तर सेवन करें।[२] इस कथन में विद्या शब्द का उल्लेख मिलता है। विद्या को केवल उस शिक्षा का पर्याय नहीं कहा जा सकता जो मात्र अक्षरबोध, लिपिबोध और गणितबोध तक ही सीमित हो। विद्या से तात्पर्य है, शिक्षा और संस्कार दोनों का समन्वय। भारतीय शिक्षा–पद्धति के मूल में यही अवधारणा है, क्योंकि यहां केवल अक्षरबोध, लिपिबोध और गणित बोध को अविद्या कहा गया है और आत्मोत्थान विषयक ज्ञान को विद्या माना गया है। तदनुसार मानव का पूर्णत्व विद्या और अविद्या के समन्वय में दर्शाया गया है। आज की शिक्षा का उद्देश्य केवल जीवनोपयोगी साधनों के उपार्जन में सहायक ज्ञान तक सीमित रह गया है। शिक्षक हो अथवा शिक्षार्थी दोनों का शिक्षाविषयक उद्देश्य एक है, और वह है– भौतिक सुख–समृद्धि में आसक्ति और उसकी प्राप्ति। इसी के दुष्परिणामों को देखते हुए नैतिक शिक्षा की अपेक्षा बल पकड़ती जा रही है। समस्त आर्यसमाजी गुरुकुलों और पाठशालाओं में इसका प्रावधान भी किया गया है, परन्तु विश्वविद्यालयीय स्तर पर जब तक इसे एक अनिवार्य विषय का स्थान प्राप्त नहीं होता तब तक स्वामी दयानन्द का स्त्री शिक्षाविषयक आदर्श कार्यान्वित नहीं हो सकता। इसी सत्य को स्पष्ट करते हुए उन्होंने ऋग्वेद का उद्धरण देते हुए कहा है– ''जितनी कुमारी हैं वे विदुषियों से विद्याध्ययन करें और वे ब्रह्मचारिणी कुमारी उन विदुषियों से ऐसी प्रार्थना करें कि आप हम सबको विद्या और सुशिक्षा से युक्त करें।''[३]

यह तो सर्वथा स्पष्ट है कि शिक्षा से स्वामी जी का अभिप्राय इसे केवल अक्षरबोध, लिपिबोध, गणितबोध और अन्य विज्ञान तथा वाणिज्य की शाखाओं के बोध तक सीमित रखना नहीं है। वे शिक्षा को चरित्र–निर्माण का आधार मानते थे। उनका मत था कि यदि माता–पिता अपने पुत्र तथा पुत्रियों को अच्छी शिक्षा देकर, तत्पश्चात विद्वान् और विदुषियों के समीप बहुत काल तक रखकर पढ़ावें तब वे कन्या और पुत्र सूर्य के समान अपने कुल और देश के प्रकाशक हों।[४] सुशिक्षा के महत्व को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है– जैसे माताएं सन्तानों को दूध आदि देकर बढ़ाती हैं वैसे ही विदुषी स्त्रियां और विद्वान् पुरुष कुमारियों और कुमारों को विद्या और अच्छी शिक्षा देकर बजाये उन्होंने विद्या और शिक्षा को मनुष्य के मानसिक और आध्यात्मिक विकास का आधार स्वीकार किया है। दूसरे शब्दों में स्वामी दयानन्द उस वैदिक मान्यता के समर्थक हैं जिसके अनुसार विद्या और अविद्या का समन्वय पूर्णत्व प्राप्ति का साधन हो सकता है। स्वामी दयानन्द शिक्षा को मनुष्य के सर्वांगीण विकास का स्त्रोत मानते थे। ब्रह्मचर्य जीवन पर पुनः–पुनः दिया गया बल उनके इस विश्वास को स्वयं स्पष्ट कर देता है कि शिक्षा वह साधन है जिसका उपार्जन समाज के सर्वांगीण विकास के लिए अनिवार्य है। जब तक स्त्रियां इस क्षेत्र में पुरुष से कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने में समर्थ नहीं हो जातीं तब तक समाज का सर्वांगीण विकास सम्भव नहीं। शिक्षा की अनिवार्यता के साथ–साथ उन्होंने इस क्षेत्र में गुरु और गुरुपत्नी के दायित्वों की भी चर्चा की है। उनके अनुसार गुरु और गुरुपत्नी को चाहिए कि वे वेद और उपवेद तथा वेद के अंग और उपांगों की शिक्षा से देह, इन्द्रिय, अन्तःकरण और मन की शुद्धि, शरीर की पुष्टि तथा प्राण की सन्तुष्टि देकर समस्त कुमार और कुमारियों को अच्छे गुणों में प्रवृत्त करावें।[६]

वस्तुतः स्वामी जी दैहिक, एन्द्रियिक, मानसिक और प्राणविषयक विकास को शिक्षा का अंग मानते थे और गुरु तथा गुरुपत्नी को इनके उपार्जन का स्रोत। उन्होंने स्त्रीशिक्षा के विरोधियों को निरुत्तर करने के लिए **'इमं मन्त्रं पत्नी पठेत्'** उद्धरण का आश्रय लिया है। शतपथ ब्राह्मण में स्पष्टतथा उल्लेख मिलता है कि जहां पुरुष विद्वान् और स्त्री अविदुषी होगी अथवा स्त्री विदुषी और पुरुष अविद्वान् रहेगा तो घर में नित्यप्रति देवासुर संग्राम मचा रहना स्वाभाविक है।[७] उनके अनुसार पुरुषों की भांति स्त्रियों के अलए व्याकरण, धर्म, वैद्यक, गणित, शिल्प–विद्या का ज्ञान अनिवार्य है, क्योंकि इसके बिना सत्य–असत्य का निर्णय, अनुकूल व्यवहार, यथा योग्य सन्तानोत्पति, उसका पालन, वर्धन और सुशिक्षा सम्भव नहीं। इन शाखाओं के अध्ययन के साथ–साथ स्त्रियों के लिए पाकविधि सीखने का भी आग्रह किया गया है।[८] उन्होंने परामर्श दिया है कि शिक्षा के लिए लड़कों को पुरुषों की और लड़कियों को स्त्रियों की पाठशाला में जाकर ब्रह्मचर्य की विधिपूर्वक सुशीलता से विद्या और भोजन बनाने की क्रिया सीखनी चाहिए।

स्वामी जी के शिक्षा–सम्बन्धी विचार भारतीय संस्कृति के सर्वथा अनुरूप हैं। तदनुसार ही उन्होंने ईश्वरीय ज्ञान वेद की शिक्षा को सर्वोपरि प्राथमिकता देने का आग्रह किया है। इस बात पर भी बल दिया है कि कन्याओं की शिक्षा भी उतनी ही आवश्यक है जितनी कि बालकों की। वे विदेशी भाषाओं की शिक्षा के विरुद्ध नहीं हैं, परन्तु यह मानते हैं कि वे भाषाएं अपनी भाषा के साथ सहायक रूप में सीखी जाएं।

उनके अनुसार गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का ध्येय विभिन्न विद्याओं और अविद्याओं में निपुणता प्राप्त करने के साथ–साथ चरित्र–निर्माण की दिशा में छात्रों का उचित मार्ग–दर्शन करना भी है। यही कारण था कि विदेशी शासकों की वक्रदृष्टि होते हुए भी गुरुकुल शिक्षा संचालकों ने अपनी शिक्षा नीति में विदेशी शासन का हस्तक्षेप कभी स्वीकार नहीं किया और अपने परिश्रम और जनसामान्य के सहयोग से, बिना किसी शासकीय आर्थिक अनुदान के इन संस्थाओं को प्रगतिपथ पर अग्रसर किया। स्वामी दयानन्द के द्वारा स्त्री–शिक्षा के प्रचार और प्रसार के लिए किए गए उपादेय योगदान के फलस्वरूप आज सरकार ने छात्राओं के लिए स्नातक स्तर तक की शिक्षा निःशुल्क कर दी है। आज माता–पिता अपनी पुत्रियों को शिक्षा दिलाने के लिए उतने ही उत्सुक हैं जितने कि पुत्रों को। यह उन्हीं के द्वारा प्रचारित नारी शिक्षा और नारी–स्वातन्त्र्य की विचारधारा का परिणाम है कि आज भारतीय ललनाएं केवल वायुसेना के प्रतिष्ठित पदों पर ही नहीं अपितु अन्तरिक्ष तक की सफल यात्रा करने में सफल हो रही हैं। वे हिमालय के उच्चतम शिखर पर सफल अभियान करने में विश्व में अपना कीर्तिमान स्थापित कर चुकी हैं।

वस्तुतः शिक्षा हमें मानव संस्कृति के आधारभूत शाश्वत संस्कारों से युक्त करती है। भारतीय नारी केवल अपने अधिकारों के लिए ही प्रबुद्ध नहीं है। स्वामी जी ने स्त्रियों को अध्यापिकाओं के पद पर नियुक्त करने का परामर्श देते हुए कहा था कि कन्याओं के विद्यालयों में केवल स्त्री अध्यापिकाओं की नियुक्ति की जाए। उनके अपने शब्दों में ''सब विद्वान् जन अपनी–अपनी विदुषी स्त्री के प्रति ऐसा उपदेश दें कि तुम्हें सबकी कन्याओं को पढ़ाना चाहिए और सब स्त्रियों को सुशिक्षित करना चाहिए।''[९] इस उद्धरण में स्त्रियों को सुशिक्षित करने वाली बात यह सिद्ध करती है कि स्वामी दयानन्द प्रौढ़ स्त्री–शिक्षा के भी पक्षधर थे। उन्होंने विदुषी स्त्रियों को कुमारी कन्याओं की विद्या, सुशिक्षा और सौभाग्य में वृद्धि के लिए उतना ही लाभकारी माना है जितना कि जागते हुए मनुष्यों के लिए प्रभातवेला गुणकारी होती है।[१०] उनके अनुसार विदुषी अध्यापिका को भूमि के तुल्य क्षमाशील, लक्ष्मी के तुल्य शोभायमान, जल के तुल्य शान्त और सहेली के तुल्य उपकारक होना चाहिए।[११]

अध्यापन कार्य उनके गृहस्थकर्त्तव्य सम्पादन में बाधक न हो इस बात को ध्यान में रखते हुए उन्होंने लिखा है कि श्रेष्ठ स्त्रियों को उचित है कि वे अच्छी शिक्षित दासियों को रखें, जिससे सब पाक आदि की क्रिया और सेवा समय पर हो सके। परिचारिका का गुणोल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है कि यह प्रीतियुक्त, सुकेशिनी, सुन्दर श्रेष्ठ कर्म करने वाली और पाकविद्या में निपुण होनी चाहिए।[१२]

निष्कर्षतः स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में स्त्रीशिक्षाविषयक जो विचार अभिव्यक्त किए हैं वे वैदिक संहिताओं में प्रतिपादित स्त्रीशिक्षाविषयक धारणाओं का अनुमोदन करते हैं और उनकी सार्वकालिक और सार्वभौमिक प्रासंगिकता की सिद्धि में सर्वथा सहायक सिद्ध होते हैं। वास्तव में हमारे देश में स्त्रीशिक्षा का ह्रास यवन आक्रमण काल में ही प्रारम्भ हुआ था। और दासता के उत्तरोत्तर कसते हुए शिकंजे ने हमारे पुरुष समाज को स्त्री शिक्षा के प्रति उदासीन होने के लिए विवश कर दिया थां दासता मनुष्य की मानसिकता के लिए उतनी ही हानिकारक है जितना कि पूर्णिमा के चन्द्रमा के लिए ग्रहण। स्वतन्त्रता से जिस राष्ट्रीयता की भावना का जागरण वांछित था, स्वतंत्रता आन्दोलन की सफलता के लिए नारियों द्वारा जो योगदान अपेक्षित था, वह तभी सम्भव हो पाया जब स्वामी दयानन्द ने अपने स्त्रीशिक्षा समर्थक विचारों को कार्यान्वित करने के लिए उद्बुद्ध भारतीय नागरिकों को आर्य कन्या पाठशालाओं, विद्यालयों, महाविद्यालयों की स्थापना करने की प्रेरणा देकर नारी को देश के प्रति अपने दायित्वों के निर्वाह के लिए सामर्थ्य प्रदान करने का अवसर दिया। इस क्षेत्र में उनका योगदान सदा–सर्वदा स्मरणीय रहेगा। डी. ए. वी. पब्लिक स्कूलों, पाठशालाओं, विद्यालयों और महाविद्यालयों की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई संख्या इस तथ्य को स्वयं सिद्ध करती जान पड़ती है। उनके स्त्रीशिक्षाविषयक विचार हमें उनके राष्ट्रप्रेम, स्त्रीकल्याण के प्रति उत्साह, और समाज कल्याण विषयक अदम्य प्रवृत्ति से परिचित कराने में सर्वथा समर्थ हैं।

सन्दर्भ :-

१. सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास–३ (२) ऋग्भाष्य, ६.४४.१८ (३) वही, २.४१.१६ (४) यजुर्भाष्य, ११.३६ (५) ऋग्भाष्य, १.१५२.६ (६) यजुर्भाष्य, ६.१४ (७) सत्यार्थप्रकाश, समुल्लास–३ (८) यजुर्भाष्य, ११.५६ (९) ऋग्भाष्य, २.४१.१७ (१०) यजुर्भाष्य, ३४.४० (११) ऋग्भाष्य, ४.७०.७ (१२) यजुर्भाष्य, ११.५६

साम्प्रदायिकता की समस्या और ऋषि दयानन्द

–डॉ० सोहनलाल सिंह आर्य

साम्प्रदायिकता भारतीय समाज की चिर परिचित समस्याओं में से एक प्रमुख विचारणीय समस्या रही है। वर्तमान युग में तो इस समस्या का राजनीतिकरण हो जाने के कारण यह अत्यधिक जटिल एवं चिन्तनीय हो गई है। साम्प्रदायिक विद्वेष, दंगे, उग्रवाद, आतंकवाद और अल्पसंख्यकवाद तथा बहुसंख्यकवाद की राजनीति– ये समस्या के जाने–पहचाने चेहरें हैं, जो समय–समय पर राष्ट्रीय परिदृश्य में दृष्टिगोचर होते रहते हैं। कभी आक्रामक रूप में तो कभी सामान्य रूप में ये सामाजिक शान्ति, प्रगति और स्थयित्व के राष्ट्रीय तन्त्र को प्रभावित करते हैं।

इस समस्या के समाधान हेतु समय–समय पर विभिन्न विचारकों ने समाधान भी प्रस्तुत किये हैं, जिनमें महात्मा गांधी का 'आदर्शवादी समाधान' विशेष प्रसिद्ध है, जिसे 'सर्वधर्म समभाव' के रूप में जाना जाता है। स्वामी विवेकानन्द और एस० राधाकृष्णन प्रभृति दार्शनिकों का भी यही मन्तव्य है। इस दृष्टिकोण के अनुसार सभी धर्म ईश्वर की ओर ले जाने वाले कल्याण–मार्ग हैं। इसलिए मानव–मात्र को सभी धर्मों के प्रति समान आदर भाव प्रदर्शित करना चाहिए। यह समाधान सभी धर्मों में निहित सत्य, परोपकार, पवित्रता, सेवा, करुणा जैसे उदात्त मूल्यों पर बल देता है। परन्तु इस 'समभाव' से इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं मिलता है कि विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाय परस्पर टकराते क्यों हैं? और इस टकराव में वे क्यों एक दूसरे का अस्तित्व मिटाने के लिए कटिबद्ध हो जाते हैं। साम्प्रदायिक टकराव से कैसे बचा जा सकता है, जिसकी सामाजिक समरसता, शान्ति और स्थायित्व के लिए आज नितान्त आवश्यकता है।

ऋषि दयानन्द ने इस जटिल समस्या के ऊपर आदर्श और यथार्थ– दोनों दृष्टियों से विचार किया है, जो प्रस्तुत निबन्ध का प्रतिपाद्य विषय भी है। आदर्शवादी दृष्टिकोण को अपनाते हुए उन्होंने विभिन्न धर्मों में निहित शाश्वत मूल्यों एवं सिद्धान्तों को न केवल स्वीकार किया है, वरन् उनके आधार पर समाज के पुनः संगठन पर बल भी दिया है। उनके शब्दों में, 'आजकल में बहुत विद्वान् प्रत्येक मतों में हैं, वे पक्षपात छोड़ सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् जो–जो बातें सबके अनुकूल हैं, उनका ग्रहण करना और जो–जो बातें एक दूसरे के विरुद्ध हैं, उनका त्याग कर प्रीति से बर्तें तो जगत् का पूर्ण हित होंवें'' (सत्यार्थ प्रकाश–भूमिका पृ०–३)

ऋषि का यह सुविचारित मत है कि उन शाश्वत मूल्यों एवं सिद्धान्तों का मूल स्रोत 'वेद' है, जो ईश्वरीय ज्ञान होने के कारण निर्भ्रान्त हैं। अतएव मानव–मात्र के लिए वेदों में प्रतिपादित धर्म–आचार अनुपालनीय एवं रक्षणीय है। दयानन्द इस देश के सांस्कृतिक इतिहास पर दृष्टिपात करते हुए भी इस निष्कर्ष पर पहँचे कि 'पाँच हजार वर्ष से पूर्व वेद मत से भिन्न संसार में दूसरा कोई मत न था, क्योंकि वेदोक्त सब बातें विद्या से अवरुद्ध हैं। वेदों की अप्रवृत्ति होने के कारण महाभारत का युद्ध हुआ। उसके उपरान्त संसार में सर्वत्र अज्ञानान्धकार व्याप्त हो गया। मनुष्य की बुद्धि भ्रमित होने से जिसके मन जैसा आया मत चलाया, जिनकी संख्या आज सहस्र से कम नहीं, परन्तु अध्ययन–मनन की सुविधा की दृष्टि से उन्हें चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है– पुराणी, जैनी, किरानी और कुरानी।' (सत्यार्थ प्रकाश– एकादश समुल्लास–अनुभूमिका पृ०–१८६)।

ऋषि दयानन्द ने इन चार वर्गों पर विचार करते हुए यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया है और उन कारणों की पहचान करने का प्रयास किया है, जिनके कारण एक सम्प्रदाय दूसरे से टकराता है। वे कारण हैं, विभिन्न सम्प्रदायों की मिथ्या वेद–विरुद्ध मान्यताएँ एवं अंधविश्वास– या, मूर्तिपूजा, अवतारवाद, पैगम्बरवाद, चमत्कार, पाप–क्षमा, श्राद्ध–तर्पण, तीर्थ–महात्म्य, गुरुडमवाद, नाम–स्मरण, ग्रहवाद आदि–आदि। साम्प्रदायिक संघर्ष की जड़ें इन भिन्न मान्यताओं में हैं। इसीलिए स्वामी दयानन्द अपने अमर ग्रंथ सत्यार्थप्रकाश के उत्तरार्द्ध की रचना करके विभिन्न सम्प्रदायों की असंगतता को सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं, जो यहाँ संक्षेप में इस प्रकार है :–

ऋषि दयानन्द ने पुराणी वर्ग के अन्तर्गत वाममार्गियों से लेकर ब्रह्म समाजियों तथा प्रार्थना समाजियों तक उल्लेख किया है। पुराणी वर्ग के अन्तर्गत आने वाले सम्प्रदायों की प्रमुख मान्यताएँ हैं– अवतारवाद, गुरुडमवाद, भाग्यवाद, मूर्तिपूजा, श्राद्ध–तर्पण, व्रत, तीर्थ, गंगा–स्नान, पाप–क्षमा और नाम–स्मरण आदि। ये वेदों को प्रमाण रूप में तो स्वीकार करते हैं, किन्तु तन्त्र–साहित्य, पुराण, उपपुराण आदि इनके मुख्य ग्रंथ हैं। अतः इन्हें ही विशेष मान्यता प्रदान करते हैं। पुजारी, महन्त, साधु, तान्त्रिक, ओझा और पण्डित आदि इन पौराणिक सम्प्रदायों के धर्म–गुरु तथा व्यवस्थापक माने जाते हैं। मूर्तिपूजा इनकी आय का नियमित स्रोत होता है तथा श्राद्ध–तर्पण, व्रत–अनुष्ठान आदि आय के अन्य आवश्यक साधन माने जाते हैं।

जैनी वर्ग के अन्तर्गत दयानन्द के वेद–विरोधी चार्वाक, जैनों, बौद्धों का समावेश किया है। उन्होंने इनकी समीक्षा 'सत्यार्थप्रकाश' के द्वादश समुल्लास में विशेष रूप से की है। दयानन्द के मतानुसार इन वेद–विरोधी मतों का जन्म वैदिक धर्म में विकृति आने के कारण उसकी प्रतिक्रियास्वरूप हुआ। इन्होंने वैदिक साहित्य तथा परम्परा के समानान्तर अपने स्वतंत्र साहित्य तथा परम्परा की रचना की। ऋषि दयानन्द के अनुसार यही कारण है कि पौराणिकों की भाँति इन सम्प्रदायों में साधु–साध्वी आदि भी दृष्टिगोचर होते हैं। दयानन्द के मतानुसार मूर्तिपूजा जैनियों से प्रचलित हुई और बौद्धों तथा पौराणिकों में उत्कर्ष पर पहुँच गयी।

किरानी वर्ग के अन्तर्गत दयानन्द ने यहूदी तथा ईसाई मजहबों का उल्लेख किया है जिनमें से दयानन्द युगीन भारतवर्ष में ईसाई धर्म अंग्रेज शासकों के धर्म के रूप में प्रतिष्ठापित था। जबूर, तौरेत तथा इंजील इनकी धार्मिक पुस्तकें हैं। पैगम्बरवाद, पाप–क्षमा, चमत्कार आदि इनकी प्रमुख धार्मिक मान्यताएँ हैं। पादरी, पोप आदि इनके धर्म–गुरु समझे जाते हैं। अनुयाइयों द्वारा प्राप्त दान इनकी आय का प्रमुख स्रोत होता है।

इनके अलावा कुरानी वर्ग के अन्तर्गत दयानन्द ने शिया, सुन्नी आदि सम्प्रदायों का उल्लेख किया है। इस वर्ग में मुसलमान आते हैं, जिनमें भारतवर्ष के सभी मुस्लिम सम्प्रदायों का समावेश हो जाता है। कुरान–मजीद, हदीस आदि इनकी धार्मिक पुस्तकें मानी जाती हैं। पैगम्बरवाद, पाप–क्षमा, चमत्कारवाद आदि इनकी प्रमुख धार्मिक मान्यताएँ हैं। इमाम, मुल्ला, मौलवी, हाफिज आदि इनके धर्म–गुरु समझे जाते हैं। इस वर्ग की आय का प्रमुख साधन मुसलमानों द्वारा समय–समय पर प्राप्त आय समझी जाती है।

दयानन्द इन सभी मत–पंथों/सम्प्रदायों का गहराई से अध्ययन–मनन करने के उपरान्त सहजतः इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि विभिन्न सम्प्रदायों का आधार सम्प्रदायजनित अन्धविश्वास तथा भ्रान्त धारणाएँ हैं, जन–साधारण में व्याप्त अज्ञानता में ही जिनकी जड़ें हैं। इसलिए साम्प्रदायिक गुरुओं और प्रवक्ताओं के सभी दावों तथा आश्वासनों को जन–साधारण समुचित परीक्षा किये बिना ही स्वीकार करने लगते हैं और इसी कारण साम्प्रदायिक आग्रहों में फँसी साधारण जनता अपनी–अपनी साम्प्रदायिक मान्यताओं और आस्थाओं को दूसरों से श्रेष्ठ समझने लगती है, जो कालान्तर में अन्य सम्प्रदायों के प्रति असहिष्णुता या कट्टरता तथा ईष्या–द्वेष के रूप में सामने आती है। आती है। दयानन्द विभिन्न सम्प्रदायों के बीच टकराव तथा ईर्ष्या–द्वेष के लिए धर्म–गुरुओं को उत्तरदायी ठहराते हैं। उनके शब्दों में, विद्वानों के विरोध ने सबको विरोध–जाल में फँसा रखा है। यदि ये लोग अपने प्रयोजन में न फँसकर सबके प्रयोजन को सिद्ध करना चाहें तो अभी एक मत हो जायें' (सत्यार्थ प्रकाश– अनुभूमिका, एकादश समुल्लास)। इसलिए वे साम्प्रदायिक एकता स्थापित करने के लिए विभिन्न सम्प्रदायों के आचार्यों से मानवीय–मूल्यों तथा समस्याओं के आधार पर एकता स्थापित करने की अपील भी करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।

दयानन्द विभिन्न सम्प्रदायों के बीच तनाव तथा संघर्ष को साम्प्रदायिक गुरुओं का निहित स्वार्थ मानते हैं। उनके अनुसार अलग–अलग 'साम्प्रदायिक प्रभु' भोली–भाली अपढ़ जनता का आर्थिक, धार्मिक तथा सामाजिक शोषण करने के लिए नित नये–नये हथकंडे खोजते हैं, इनसे उन्हें धन तथा कामोपभोग की नित्य प्रति प्रचुर सामग्री प्राप्त होती रहती है। यही कारण है कि दयानन्द साम्प्रदायिकता के मनोवैज्ञानिक आधार पर चोट करने के लिए जन–जन में व्याप्त अज्ञानता, मिथ्या विश्वासों तथा अंधश्रद्धा पर चोट करते हैं, जिनमें अवतारवाद, गुरुडमवाद, पैगम्बरवाद, भाग्यवाद, पाप–क्षमा, कालवाद आदि प्रमुख हैं, वहाँ इसी के साथ साम्प्रदायिकता के आर्थिक 'स्रोतों को बंद करने के लिए उसके सामाजिक तथा धार्मिक आधार को छिन्न–भिन्न करने का प्रयत्न करते हैं, जिनके अन्तर्गत मूर्तिपूजा, व्रत, तीर्थ, कुपात्रों को दान देना आदि का खण्डन विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

दयानन्द विभिन्न सम्प्रदायों में व्याप्त अंधविश्वास तथा रूढ़ियों का– जिन्हें वे प्रायः पाखण्ड के नाम से सम्बोधित करते दृष्टिगोचर होते हैं,– का खण्डन करने के लिए शास्त्रार्थ प्रणाली को आधार बनाते हैं, जिनमें वे सभी अवैदिक मत पंथों तथा उनकी आधारभूत मान्यताओं की अवैज्ञानिकता तथा तर्कहीनता का प्रतिपादन प्रतिपक्षी की उपस्थिति में करते हैं। प्रायः जन–साधारण के सम्मुख इस प्रकार के तर्कीय आयोजनों का परिणाम यह होता है कि जन–साधारण असंगत, तर्क–विरुद्ध अंधविश्वासों का परित्याग करने लगते हैं और दयानन्द द्वारा प्रतिपादित वैदिक मान्यताओं की सुगमता को स्वीकार करने के लिए उद्यत हो जाते हैं। दयानन्द द्वारा प्रवर्तित पाखण्ड–खण्डन के आन्दोलन की प्रासंगिकता को इसी आधार पर भलीभाँति समझा जा सकता है।

दयानन्द की दृष्टि में साम्प्रदायिकता साम्प्रदायिकता है : फिर चाहे वह कथित वैदिक नाम पर हो अथवा अवैदिक वह भारतीय हो अथवा अभारतीय। जन–जन में व्याप्त अज्ञानता, मिथ्या विश्वास तथा पूजा–पाठी वर्ग का निहित स्वार्थ, उसके ये दो प्रमुख संघटक तत्व होते हैं। इसीलिए दयानन्द इन दोनों ही तत्वों के खण्डन के लिए प्राणपण से संकल्पवान, जान पड़ते हैं। जो उनके मण्डनात्मक या विधायी पक्ष को मूर्तरूप प्रदान करने के लिए आवश्यक प्रतीत होता है।

दयानन्द के साम्प्रदायिकता– विरोधी दृष्टिकोण को समुचित रूप में समझने के लिए धर्म तथा साम्प्रदायिकता में भी अन्तर करना आवश्यक प्रतीत होता है। दयानन्द के मतानुसार धर्म का अभिप्राय सत्य, न्याय, परोपकार, पवित्रता आदि उन शाश्वत मानवीय–मूल्यों से है, जिनका व्यक्ति तथा समाज की उन्नति तथा मुक्ति के लिए पालन करना आवश्यक है। उनके शब्दों में, 'जो पक्षपात–रहित न्यायाचरण, सत्य भाषणादि युक्त ईश्वराज्ञा वेद से अविरुद्ध है उसको धर्म.... मानता हूँ।' किन्तु साम्प्रदायिकता का आधार संकुचित, निहित स्वार्थ तथा अज्ञानता से है। दयानन्द के अनुसार विभिन्न सम्प्रदायों के अन्तर्गत सत्य, न्याय, पवित्रता, परोपकार, अहिंसा और शान्ति आदि मानवीय मूल्यों को किसी न किसी रूप में अवश्य स्वीकार किया जाता है, अन्यथा समाज में अस्तित्व बनाये रखना असम्भव हो जायेगा, तथापि अपने निहित स्वार्थों को प्रमुखता और वरीयता प्रदान करने के कारण ही विभिन्न सम्प्रदायों मे परस्पर इतने विभेद, झूठ तथा ईर्ष्या–द्वेष उत्पन्न हो गये हैं कि उन्हें धार्मिक तो क्या सहजतः सामाजिक संगठन स्वीकार करने में भी कठिनाई का अनुभव होने लगता है। इसलिए दयानन्द जहां एक ओर समाज में प्रचलित विभिन्न सम्प्रदायों में व्याप्त अज्ञानता, भ्रान्त धारणाओं, अंधविश्वासों तथा पाखण्डों का खण्डन करते हैं, वहीं दूसरी ओर वैदिक धर्म, त्रैतवाद, वैदिक कर्मफलवाद, पुरुषार्थ चतुष्टय, संस्कार आदि का मण्डन भी करते दृष्टिगोचर होते हैं जो उनकी दृष्टि में सबसे प्राचीन सत्य मानवतावादी धर्म है।

अन्त में, निष्कर्ष रूप में कहा जाता सकता है कि दयानन्द साम्प्रदायिकता की समस्या दूर करने के लिए विभिन्न धार्मिक मत–पंथ में निहित शाश्वत महत्व के तत्वों, मूल्यों की एकता पर बल देते हैं। उनके रक्षण, पल्लवन के लिए वैदिक धर्म के संस्थापन का लक्ष्य सामने रखते हैं, जो न केवल विश्व का प्राचीनतम धर्म है, वरन् सभी शाश्वत मूल्यों का सार्वभौम स्रोत भी है। इसी के साथ–साथ विभिन्न साम्प्रदायिक, अंधविश्वासों एवं भ्रान्त मान्यताओं से मानव–मात्र को मुक्ति दिलाने हेतु उनकी अतार्किकता, अवैदिकता एवं असत्यता का भी सफलतापूर्वक प्रतिपादन करते हैं, जिनकी वर्तमान भूमण्डलीयकरण के दौर में महती आवश्यकता है।

–दर्शनशास्त्र विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

दिवाःसूनुः दयानन्द

–*स्व० पं० चमूपति* 'एम०ए०'

स्वामी दयानन्द एक महान् आत्मा थे। उनके मन्तव्यानुसार परमात्मा कर्मों का शुभाशुभ फल देने में पूर्ण न्याय से काम लेता है। परन्तु उसकी दया का प्रकाश और प्रसार प्राणीमात्र के लिए होता है। सूर्य, पृथ्वी, तारे, वायु, जल तथा उसके अन्य प्रसादों का सभी प्राणी समान रूप से उपभोग करते हैं। यदि कोई–व्यक्ति इनसे विशेष रूप से लाभान्वित होता है तो इसका कारण उसके पूर्व का वर्तमान कर्म होते हैं। ये सब सम्मिलित प्रसाद परमात्मा की दया तथा निष्पक्षता के द्योतक होते हैं।

महर्षि दयानन्द ने परमात्मा की न्याय–व्यवस्था पर बड़ा बल दिया है। एक के बाद दूसरे सन्त ने भाग्य पर भरोसा रखने की शिक्षा दी। इस प्रकार की शिक्षाओं ने जहाँ एक ओर मनुष्य को कर्मण्यता और उद्योग से विमुख किया वहाँ दूसरी ओर दुष्कर्मियों की दुष्ट प्रवृत्तियों को भी प्रोत्साहित किया। बताया गया कि परमात्मा जिसे चाहे दंड दे सकता है और जिसे चाहे पुरस्कृत कर सकता है। वह चाहे तो पुण्य कर्मों के लिए दंडित और बुरे कर्मों के लिए पुरस्कृत कर सकता है। क्या इस प्रकार की धार्मिक शिक्षाओं में भलाई की कोई भावना निहित हो सकती है? परमात्मा के न्याय में निष्ठा रखने से मनुष्य कर्मण्य एवं भला बनता है और परमात्मा द्वारा मनमानी किए जाने की भावना से मनुष्य में समस्त प्रकार की बुराईयों के साथ परवशता की भावना का उदय होता है।

वेद में परमात्मा को पितृणां पितृतमः पिताओं का पिता, अम्बितमा माताओं की माता कहा है। पिता अपने पुत्रों में भी दया की तराजू को पकड़े रहता है। उनकी उदण्डता के लिए उन्हें दण्ड देता है। उनकी बुराइयों को दूर करने का यत्न करता है। अच्छे पुत्र के लिए वह प्रेम होता है। असीम पिता की दयालुता और प्रेम भी असीम ही होगा। इनकी वास्तविक अनुभूति उसके उन बच्चों को हो ही सकती है जिनके हृदयों में उसकी असीमता घर किए होगी। मनुष्यों अथवा परमात्मा के ऐसे बच्चों को वेद में **'अमृतस्य पुत्राः'** कहा गया है। इन बच्चों ने बुराई को पीछे छोड़ा होता है। वे कर्मठता और उत्साह की सजीव मूर्ति होते हैं। उनका जीवन कर्त्तव्य परायणता का जीवन होता है। परमात्मा की प्रसन्नता ही उनके कार्य का पारितोषिक होता है। उनका प्रभु–प्रेम स्वतः प्रवाहित रहता है। वे निष्काम भाव से परोपकार–रत रहते हैं। यदि परमात्मा के हाथों कष्ट मिलते हैं तो वे भी दया का रूप लिए होते हैं। उनका अभिप्राय आत्मा का सुधार ही होता है। दुनियादार व्यक्ति पारितोषिक की आशा में किसी गुण को धारण करेगा तो परमात्मविश्वासी पुत्र जिसे वेद में 'दिवाः सूनुः' कहा गया है सत्कर्म को परमात्मा के प्रति भेंट रूप में अर्पण रखेगा।

महर्षि दयानन्द इसी प्रकार का **'दिवाःसूनुः'** अर्थात् दिव्य पुत्र था जिसने अपना समस्त जीवन भेंट रूप में परमात्मा को अर्पण कर रखा था।

दयानन्द सच्चे अर्थ में सन्त थे। वह परम तपस्वी और त्यागी थे। वह परमात्मा के प्यारे थे। उनके हृदय में सदैव दिव्य धारा प्रवाहित रहती थी। उस धारा में उनके ऐहिक कष्टों और कठिनाइयों की गरज शान्त हो जाया करती थी। अपने जीवन को खतरे में डालकर भी वह जिन उच्च नैतिक आदर्शों पर आरूढ़ रहते थे वे उस उच्चधार्मिक और नैतिक व्यवस्था के अलौकिक ढाँचे के अविच्छिन्न अंग थे जिस पर विश्व का नियमन किया गया है और जिसे वह सदैव अपनी आन्तरिक आँखों से देखा करते थे। उन्हें वास्तविकता का भान हो जाया करता था। यास्क की परिभाषानुसार ऋषि वह होता है जो धर्म को देखता है। आर्य समाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द इस सूत्र के ठीक–ठीक भाव में ऋषि थे।

पंजीयन संख्या (R.N.I. No.)- DELMUL/2005/15488
डाक पंजीकरण संख्या DL(c)-01/1213/2021-23
Licence to Post without prepayment of Postage. U (c)-289/2021-23

सोशल मीडिया के माध्यम से स्वामी आर्यवेश जी से जुड़ें

आर्य समाज के त्यागी, तपस्वी एवं तेजस्वी संन्यासी स्वामी आर्यवेश जी से जुड़ने के लिए इस लिंक पर क्लिक करें :- www.facebook.com/SwamiAryavesh व फेसबुक पेज को लाइक करें तथा अन्य मित्रों को भी प्रेरित करें।

ई-मेल : aryavesh@gmail.com

Tel. :-011-23274771

प्रतिष्ठा में :–

अवितरण की दशा में लौटाएँ –
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
"दयानन्द भवन" 3/5 आसफ अली रोड, नई दिल्ली–110002

पृष्ठ 1 का शेष

वर्तमान में देश व विश्व को आर्य समाज की पहले से कहीं अधिक आवश्यकता है

चाहिए। हमें प्रयास करना चाहिए कि यज्ञ सहित समस्त कार्यक्रम आर्य समाज की चार दीवारी से बाहर निकल कर किये जाये। यदि लोग आर्य समाज में नहीं आते तो हमें उनके दरवाजे पर जाना होगा। विचार कीजिए यदि एक ही दिन सारे देश में, देश के हर शहर में और शहर के प्रत्येक क्षेत्र में तथा गावों में इस प्रकार के कार्यक्रम आयोजित हों तो कोई कारण नहीं है कि लोग आर्य समाज से प्रभावित न हों और इसके साथ ही सामाजिक बुराईयों के विरुद्ध आम लोगों की एकजुटता न हो।

2. वेद प्रचार सप्ताह, वार्षिकोत्सव एवं अन्य विशेष अवसरों पर आर्य समाजों में प्रभावशाली कार्यक्रम आयोजित किये जायें और उन कार्यक्रमों में क्षेत्रीय नेताओं को अवश्य आमंत्रित करें तथा प्रात:काल प्रभातफेरी अवश्य निकालें।

3. देश की स्वतन्त्रता तथा आर्य समाज के प्रचार-प्रसार में जिन क्रांतिकारियों और महापुरुषों ने अपना जीवन बलिदान किया है ऐसे व्यक्तियों के बलिदान दिवस पर राष्ट्ररक्षा सम्मेलन का आयोजन करें और जोरदार जुलूस निकालकर युवाओं में क्रांति के बीज बोयें। उनसे सम्बन्धित पुस्तकें तथा ट्रैक्ट आदि भी वितरित करें जिससे उनके प्रेरणादायी जीवन की जानकारी आमजनों को हो सके।

4. महिला दिवस पर 8 मार्च को कन्या भ्रूण हत्या, महिला उत्पीड़न के विरुद्ध झण्डे-बैनर लेकर जुलूस निकालें जिसमें महिलाओं की उपस्थिति विशेष हो। इस अवसर पर धरना तथा प्रदर्शन का जोरदार आयोजन किया जाये जिसमें कन्या भ्रूण हत्या, दहेज प्रथा तथा महिला उत्पीड़न के विरुद्ध जन-जागरण किया जाये तथा महिलाओं को आर्य समाज से जोड़ने का प्रयास किया जाये।

5. शिवरात्रि (ऋषि बोध दिवस) के अवसर पर धार्मिक क्षेत्र में पनप रहे पाखण्ड, अन्धविश्वास, गुरुडम, रुढ़िवाद आदि कुरीतियों के विरुद्ध जन-चेतना पैदा करने के लिए, जुलूस निकाले जायें तथा नुक्कड़ नाटक के माध्यम से जातिवाद, साम्प्रदायिकता, धार्मिक पाखण्ड आदि बुराईयों के विरुद्ध जन चेतना जाग्रत की जाये।

इन सब कार्यक्रमों पर धरना, प्रदर्शन व जुलूस आदि निकालने के पीछे भावना है कि पूरे देश तथा विश्व में एक सन्देश जायेगा कि पूरे विश्व की आर्य समाज एक मुद्दे को लेकर सक्रिय हैं। संगठन की शक्ति को बढ़ाने के लिए तथा एकजुटता एवं समन्वय स्थापित करने के लिए इस प्रकार के प्रयास अत्यन्त आवश्यक हैं। इससे आर्य समाज की एक विशेष पहचान बनेगी।

जब हम आर्य समाजी अपने उत्सव, समारोह तथा विविध अवसरों पर शोभा यात्रा निकालते हैं तो यह ध्यान रखा जाये कि अपने महापुरुषों से सम्बन्धित नारे व वैदिक धर्म के नारे लगाने के साथ-साथ ज्वलन्त मुद्दों को लेकर भी नारे लगाये जायें तथा उनसे सम्बन्धित बैनर भी साथ लेकर चलें। इससे लाखों लोगों तक आर्य समाज का सन्देश जायेगा कि आर्य समाज इन मुद्दों पर जागरूक है, समाज को जगाना चाहता है। यदि हम यह सब कर पाये तो हमारा उत्सव मनाना सार्थक हो जायेगा।

जब भी कोई छोटा या बड़ा कार्यक्रम हम करें तो उसकी तैयारी से लेकर सम्पन्न होने तक प्रिन्ट मीडिया, इलेक्ट्रानिक मीडिया एवं वर्तमान में सर्वाधिक प्रभावी सोशल मीडिया के माध्यम से अपने कार्यक्रम का प्रचार करें। जो कार्यक्रम हो रहा है उसे फेसबुक आदि पर डालकर लाखों लोगों तक पहुंचाया जा सकता है। हम अपने कार्यक्रमों के लिए प्रेस से सम्पर्क नहीं करते, भविष्य में हम जब भी कार्यक्रम करें, अखबारों में, मैगज़ीन में तथा टीवी आदि को अपनी सूचना अवश्य भेजें तथा चित्र भी दें। पूरे देश में इस प्रकार की गतिविधियों से बहुत शीघ्र आर्य समाज छा जायेगा। हमारी पूरी कोशिश होनी चाहिए कि हम आर्य समाज से बाहर निकलकर अपने कार्यक्रम करें। प्रात: तथा सायंकाल सैर करने के लिए पार्क में आने वाले लोगों को अपने कार्यक्रमों की जानकारी दें तथा आर्य समाज के जो नवयुवक योग से परिचित हैं वे वहां योग की कक्षायें लगायें तथा धीरे-धीरे विधिवत आर्य समाज के बैनर के नीचे यह कार्यक्रम सम्पन्न हों। वहां आने वालों को अपनी संस्कृति तथा आर्य समाज से भी परिचित करायें।

विभिन्न अवसरों तथा दीपावली आदि पर्वों पर लोग भेंट स्वरूप मिठाई आदि देते हैं। सब जानते हैं कि बाजार में मिठाई के नाम पर जहर बेचा जा रहा है। अगर देनी ही है तो घर पर बनी हुई मिठाई दें लेकिन साथ ही वैदिक साहित्य जैसे 'सत्यार्थ प्रकाश', 'ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका' आदि पुस्तकें उपहार स्वरूप अवश्य प्रदान करें। विवाहादि अवसरों पर भी रिश्तेदारों व प्रतिष्ठित व्यक्तियों को साहित्य भेंट स्वरूप प्रदान करें। स्थानीय दुकानदारों से यदि साहित्य उपलब्ध नहीं हो तो सार्वदेशिक सभा से साहित्य मंगाया जा सकता है।

महर्षि का निर्वाण हमें जगाने, श्रेष्ठ व्रतों संकल्पों को दुहराने की प्रेरणा देता है। अत: आर्यो! उठो, जागो और अपने कर्तव्यों का बोध करो, आर्य समाज के नेताओं कर्णधारों तथा कार्यकर्ताओं को मिलकर गम्भीरता पूर्वक विचार करना चाहिए कि आर्य समाज का विस्तार पहले से अधिक होने पर भी हमारा यथोचित प्रचार क्यों नहीं हो पा रहा है। इसलिए आर्यो! आओ एकबार फिर एकजुट होकर इस महर्षि निर्वाण दिवस पर हम संकल्प करें कि हम सब योजनाबद्ध ढंग से महर्षि के मिशन को पूर्ण करेंगे और आने वाले वर्ष 2024 में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी की 200वीं जयन्ती मनाने के लिए प्राण-पण से कार्य करेंगे तथा तन-मन-धन से सहयोग करेंगे। पूरे देश में जगह-जगह कार्यक्रम आयोजित करके महर्षि दयानन्द सरस्वती जी द्वारा किये गये कार्यों को उल्लेखित करेंगे। महर्षि द्वारा आजादी के आन्दोलन में किये गये योगदान को आज जिस तरह से नजरअंदाज किया जा रहा है, उसे ध्यान में रखकर हम सबको आर्य समाज के मंचों से आम जनमानस को सच्चाई से अवगत कराना होगा। इतिहास को कभी भी झूठ के द्वारा मिटाया नहीं जा सकेगा। इन संकल्पों के साथ हम सबको कार्य करना होगा।

दीवाली को प्रदूषण मुक्त मनाने का प्रयास करें

दीपमाला का शुभ पर्व फिर आ रहा है। यह उत्साह और उल्लास का त्यौहार है। हम चाहे इसे राम से जोड़ें या लक्ष्मी से इसका उद्देश्य हमारे जीवन में खुशियाँ लाना ही है। इसलिए कोई भी ऐसा काम इस पर्व की भावना के अनुकूल नहीं हो सकता जिससे दूसरों के लिए संकट पैदा हो जाए। क्या हम ऐसी दीवाली की कल्पना कर सकते हैं जिसमें मां–बाप अपने छोटे बच्चों को दूर रखने का प्रयास करें, बीमार और बूढ़े लोग इसके नाम से ही सहम जाएं? हम समय पर नहीं चेते तो ऐसा ही समय आने वाला है जब दीवाली शुभ संदेश देने वाली नहीं रहेगी– इससे लोग खुश नहीं होंगे, डर जाएंगे।

मैं आपके सामने जो तथ्य रखना चाहता हूँ उनके बारे में आप पहले से ही जानते होंगे। मैं तो केवल याद दिलाने का प्रयास कर रहा हूँ।

१. हमारे देश में कम से कम २० प्रतिशत बच्चे दमा और सांस के अन्य विकारों से पीड़ित हैं। इनमें से बहुतों के विकार गम्भीर बीमारियों का रूप धारण कर चुके हैं। इन बीमारों में से ५० प्रतिशत से भी अधिक दिल्ली जैसे नगरों में ही रहते हैं।

२. सांस के रोगों का अनुपात बूढ़ों में इससे भी अधिक है। चिकित्सा और जीवनयापन की बेहतर सुविधाओं के बावजूद नगरों में रहने वाले लोगों में ये रोग ग्रामीण लोगों की तुलना में अधिक होते हैं।

३. दिल्ली में आग लगने और आग से जलने की घटनाओं में दीवाली के दिनों में खास वृद्धि होती है। सामान्य दुर्घटना में जलने की तुलना में पटाखों से जलना अधिक खतरनाक होता है क्योंकि इनमें बारूद और दूसरे रासायनिक पदार्थ होते हैं।

इनका कारण तो साफ है।

हमारे नगरों–खासकर दिल्ली के वायु में भारी मात्रा में प्रदूषण है। कभी–कभी तो दिल्ली सबसे अधिक प्रदूषित नगरों के शिखर पर बैठ जाती है। शायद ही कोई मौसम हो जब दिल्ली का वायुमण्डल स्वास्थ्य के मापदण्डों के अनुसार एकदम सही माना जाता हो। लेकिन दीवाली के दिनों में यह लगभग 'गैस चैम्बर' का रूप लेती है।

थोड़ा ध्यान दें कि इस हवा में होता क्या है।

धुएँ से पैदा होने वाले कार्बन–डाई–ऑक्साइड के बारे में सब जानते हैं, लेकिन इसी कार्बन के मोनो–ऑक्साइड के बारे में हम कितना जानते हैं? यह गैस खामोश हत्यारिन है। जो मारने से पहले न तो आवाज करती है और न महसूस होने देती है कि मौत कितनी निकट है। एक बार वार करने पर व्यक्ति में चाहकर भी कुछ करने की हिम्मत नहीं रहती। कुछ दिन पहले दिल्ली में ही एक पूरा परिवार मौत की नींद सो गया क्योंकि बरसात से बचने के लिए वे अपनी ही कार में देर तक बैठे रहे। इंजन से निकलने वाला कार्बन–मोनो–ऑक्साइड उन्हें लील गया। यह अकेली घटना नहीं है– ऐसी दुर्घटनाएँ होती ही रहती हैं।

नाइट्रोजन और सल्फर के ऑक्साइड, हाइड्रो कार्बन के विभिन्न यौगिक भी प्रदूषित वायु के अंग होते हैं। लेकिन एक खतरनाक गैस ओजोन भी धुएँ से भरी धुंध यानी स्मोग को घातक बनाती है। स्मोग धुएँ और धुंध के मिश्रण का नाम है जो भारी होने के कारण ऊपर से उतर कर धरती के निकट आकाश में लटका रहता है। इसमें पानी और धुएँ के अतिरिक्त विभिन्न गैसें और धूल के कण भी होते हैं। इस शब्द का पहली बार उपयोग १६०५ में यूरोप में किया गया जब कारखानों के धुएँ के कारण धुएँ के बादल नगरों के आकाश को ढक लेने लगे थे। लेकिन अब यह विषैले बादल हमारे नगरों में आम दृश्य बन गए हैं। दिल्ली स्मोग के प्रकोप वाले दुनिया के तीन प्रमुख नगरों में एक है। इस तरह के बादल इसलिए अधिक खतरनाक होते हैं कि ये भूमि के बहुत पास होते हैं।

चिंता की बात यह है कि ये सारे तत्व उस धुएँ में होते हैं जो दीवाली के दिनों पटाखों के कारण पैदा होता है। साधारण स्मोग की तुलना में यह इसलिए अधिक घातक है कि यह धरती के निकट ही नहीं होता हमें चारों ओर से घेरे रहता है। हम उसी को पीते हैं।

दीवाली हम मनाएँ और खूब उल्लास के साथ मनाएँ। पटाखे और फुल्झड़िया भी चलाएँ, दिए भी जलाएँ। आखिर यह हमारा प्रकाश पर्व है। लेकिन मर्यादा का भी ध्यान रखें। अगर हम गाड़ियों पर प्रदूषण के मानक लागू करते हैं, कारखानों को प्रदूषण रहित बनाने का प्रयास करते हैं तो अपने सामाजिक व्यवहार पर भी कुछ अंकुश लगाएँ। हमारे शास्त्रों की भी यही सलाह है कि– अति का सर्वत्र त्याग करना चाहिए।

आशा करता हूँ कि मेरे इस अनुरोध पर आप गम्भीरता से विचार करेंगे।

दिल्ली-३५

प्रो० विट्ठलराव आर्य, सभा मंत्री, प्रकाशक व मुद्रक द्वारा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, 3/5 महर्षि दयानन्द भवन, (रामलीला मैदान/आसफ अली रोड), नई दिल्ली-110002 के लिए प्रकाशित तथा ज्योति प्रिंटिंग प्रेस, ई-94, सैक्टर-6, नोएडा-201301 से प्रकाशित एवं मुद्रित। (दूरभाष : 011-23274771)
सम्पादक : प्रो० विट्ठलराव आर्य (सभा मन्त्री) मो.:0-9849560691, 0-9013251500 ई-मेल : sarvadeshik@yahoo.co.in, sarvadeshikarya@gmail.com वैबसाइट : www.vedicaryasamaj.com
वैदिक सार्वदेशिक साप्ताहिक में छपे लेखों तथा विचारों से सम्पादक या सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की सैद्धान्तिक मतैक्यता होना अनिवार्य नहीं है।